बी॰ए॰ भाग-द्वितीय (हिन्दी) **हिन्दी साहित्य**

सैमेस्टर-तीसरा

एकांश संख्या : 1, 2

डिस्टेंस एजुकेशन विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला
(सर्वाधिकार सुरक्षित)

विषय-सूची

एकांश संख्या : 1 (खण्ड क)

1.1 : रीतिकाल
1.2 : हिन्दी भाषा : उद्‌भव और विकास
1.3 : हिन्दी भाषा के विविध रूप—राज भाषा, राष्ट्र भाषा, शब्द भण्डार
1.4 : मानकीकरण

एकांश संख्या : 2 (खण्ड ख)

रीति सैरभ

2.1 : रसखान, सेनापति
2.2 : बिहारी, भूषण
2.3 : घनानंद, गुरु गोबिन्द सिंह
2.4 : जयशंकर प्रसाद : व्यक्तित्व और कृतित्व और ग्राम कहानी का परिचय
2.5 : आकाशदीप, आंधी
2.6 : मधुवा, पुरस्कार

पाठ संख्या - 1.1 **लेखिका-डॉ. गायत्री मिश्रा**

रीतिकाल

रुपरेखा :

1.1.0 उद्देश्य

1.1.1 भूमिका

1.1.2 रीतिकाल : नामकरण

1.1.3 परिस्थितियाँ

1.1.3.1 राजनीतिक परिस्थिति

1.1.3.2 सामाजिक परिस्थिति

1.1.3.3 धार्मिक परिस्थिति

1.1.3.4 साहित्यिक परिस्थिति

1.1.4 प्रवृत्तियाँ

1.1.5 शिल्प पक्ष

1.1.6 सारांश

1.1.7 अभ्यास प्रश्नावली

1.1.8 शब्दावली

1.1.0 उद्देश्य :

रीतिकाल हिन्दी साहित्य के इतिहास का महत्वपूर्ण काल है। 1643 ई. से लेकर 1843 ई. तक का समय हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'रीतिकाल' के नाम से जाना जाता है। इस पाठ में रीतिकाल के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से विचार किया जाएगा। इस पाठ के अध्ययन के बाद आप :

* रीतिकाल का स्वरूप स्पष्ट कर सकेंगे।
* इसके नामकरण का विवेचन कर सकेंगे।
* इस काल की परिस्थितियों को समझ सकेंगे।
* विभिन्न परिस्थितियों के प्रभाव को जान सकेंगे और
* इस काल के साहित्य की विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे।

1.1.1 भूमिका

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल से पूर्व भक्तिकाल और आदिकाल आते हैं जिस प्रकार आदिकाल का

प्रभाव भक्तिकाल पर रहा उसी प्रकार भक्तिकाल के सन्तों–कवियों का प्रभाव रीतिकाल पर भी रहा जो उनके साहित्य पर लक्षित होता है। रीतिकाल का एक बहुत बड़ा कवि वर्ग इनसे प्रभावित होकर इनका अनुसरण करते हुए काव्य रचना की ओर प्रवृत रहा। रीतिकाल में एक ही दर्रे पर कविता लिखी गई। इसमें पहले काव्य के लक्षण देना फिर स्वनिर्मित उदाहरण देना, इसी पद्धति पर अधिकांश कवियों ने रचनाएँ की। इस समय मुख्य विषय श्रृंगार ही था। इस समय की कविता पर तत्कालीन सामन्तों की विलासी मनोवृत्ति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है, क्योंकि कवि अपने आश्रयदाताओं के मनोरंजन के लिए उनकी रुचि के अनुसार काव्य रचता था। अतः इस समय कविता विषय और प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से ह्रासोन्मुख रही। इस पाठ में हम इसके विभिन्न कारण और प्रभावित करने वाली परिस्थितियों का विवेचन करेंगे।

1.1.2 रीतिकाल : नामकरण

रीतिकाल के नामकरण से पूर्व 'रीति' शब्द का अर्थ स्पष्ट होना ज़रूरी है। 'रीति' शब्द की व्युत्पत्ति 'रीड' धातु से है जिसका अर्थ है गति, चाल मार्ग या प्रणाली। किन्तु रीतिकाल से यह शब्द जुड़कर एक विशेष प्रकार के साँचे या ''पैटर्न'' के आधार पर रचे गये काव्य की ओर इंगित करता है। वामन ने जिस 'रीति' सम्प्रदाय का विवेचन किया था, यह शब्द उससे पृथक् है। वामन ने काव्य गुण पर आधारित 'पद रचना' को 'रीति' कहा जो उनके पश्चात् एक शैली का पर्याय बनकर रह गई। हिन्दी में रीतिकाल का 'रीति' शब्द व्यापक अर्थ का परिचायक है। यह रस, अलंकार, शब्द शक्ति, छन्द आदि काव्यांगों को आधार मानकर लिखी गई हैं वे एक खास ''पैटर्न'' में बंधी होने के कारण रीतिकाव्य के अन्तर्गत आई।

हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल के नामकरण पर विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। इस काल को अनेक नाम दिये गये। सर्वप्रथम मिश्रबंधुओं ने 'मिश्रबन्धु विनोद' नामक ग्रंथ में इस युग को अलंकारों की प्रधानता के कारण 'अलंकृत काल' नाम दिया, किन्तु अन्य विद्वानों ने इस नाम को अपूर्ण मानते हुए इसमें अनेक दोष बताए। इन विद्वानों का मत था कि 'अलंकार काल' कहने से इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति का बोध नहीं होता। फिर अलंकारों से यह भी स्पष्ट नहीं होता कि अलंकारों से पूर्ण कविता या अलंकरण पर बल देने वाली कविता को अलंकृत काल कहा जाए। यदि अलंकृत काल नाम रखा जाए तो रस, छन्द आदि काव्य के अन्य अंगों पर रची रचना को किस काल में रखा जाए? अतः 'अलंकृतकाल' इस युग का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं करता।

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे श्रृंगार की प्रधानता के कारण 'श्रृंगारकाल' की संज्ञा दी जो एकांगिता के दोष से मुक्त नहीं है। क्योंकि इस समय श्रृंगार प्रधान ही नहीं बल्कि भूषण ग्वाल जोधराज गुरू गोबिन्द सिंह आदि की वीर रस, वृंद, गिरधर, बेताल, घाघ आदि के नीतिपरक दोहे भी रचे गये। इन्हें किस काल में समाहित किया जाएगा? अतः यह नाम भी अपूर्ण है।

डा. रमाशंकर शुक्ल ने इस काल को कलापक्ष की प्रधानता के कारण 'कलाकाल' की संज्ञा दी। इस नाम में भी अपूर्णता का बोध होता है। केवल कला पक्ष की प्रधानता को देखकर इसे 'कलाकाल' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि साहित्य में कला और भाव दोनों पक्ष अभिन्न रूप में जुड़े होते हैं। इस काल के कवियों में भावों की उपेक्षा है ऐसा कहना उन कवियों के प्रति अन्याय ही होगा।

पं. रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल में रीति ग्रन्थों की प्रचुरता के कारण इसे रीतिकाल कहा। यह नाम इन ठोस धरातल पर रखा गया है–

1. इस काल के प्रत्येक कवि ने रीति पद्धति में ही अपनी रचनाएं की हैं।
2. रीतिकाल कहने से इसकी सीमा का विस्तार हो जाता है जिसमें रीतिमुक्त और रीतिबद्ध कवियों के अतिरिक्त वीर रस, नीति, भक्ति और सभी फुटकल काव्य और कवियों को समाहित किया जा सकेगा।
3. इस नाम से कविता का भाव पक्ष और कला पक्ष का सम्बन्ध बना रहता है और किसी महत्वपूर्ण वस्तुगत विशेषता की उपेक्षा भी नहीं होती।

अतः रामचंद्र शुक्ल द्वारा दिया गया नाम 'रीतिकाल' सम्पूर्ण और सार्थक है।

1.1.3 परिस्थितियाँ :

साहित्य अपने युग की उपज होता है। इसीलिये उस पर समाज का सामाजिक परिस्थितियों एवं गतिविधियों का प्रभाव पड़ता है। साहित्य की प्रवृत्तियों को ठीक से समझने के लिए समसामयिक परिवेश अर्थात् तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक हैं। रीतिकालीन साहित्य की रचना अकबर के बाद के मुगल सम्राट् और उनके विलासी सामन्तों के मनोरंजन के लिए उनकी विलासी मनोवृत्ति को ध्यान में रख कर की गई। अब हम इन परिस्थितियों पर विस्तार से विचार करेंगे।

1.1.3.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ :

इस काल में मुगल वैभव अपने चरम उत्कर्ष पर था। जहाँगीर के बाद शाहजहाँ के शासन काल में गोलकुण्डा, अहमदनगर, बीजापुर उनके साम्राज्य में शामिल हो चुके थे और अब मुगलों के पास 22 सूबे थे। जिनकी खूब आमदनी थी। कला, संगीत, धन धन्य से साम्राज्य परिपूर्ण था तथा मयूर सिंहासन तथा ताजमहल का निर्माण हो चुका था। जब शाहजहाँ बीमार पड़ा, तो उनके बेटों में सिंहासन के लिए युद्ध शुरू हो गए। औरंगजेब ने दारा शिकोह की हत्या करके गद्दी हथिया ली। औरंगजेब के समय में ही आगरा, अवध और इलाहाबाद के सूबों में विद्रोह हुए। महाराष्ट्र में शिवाजी ने और पंजाब में सिक्खों ने भी बगावत शुरू कर दी थी इधर नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों से मुगल साम्राज्य का पूर्णतया पतन हो गया। औरंगजेब के उत्तराधिकारियों में कोई भी योग्य न था। उनका अधिकतर समय नाच, रंग, सुरा और सुन्दरी में ही व्यतीत होता था। इधर अंग्रेज़ भी व्यापार के बहाने भारत में प्रवेश कर चुके थे। राज व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो चुकी थी। सारी राजनीति राजमहलों के षड्यन्त्रों तक सीमित रह गई तथा साम्राज्य की बागडोर तबलची और महारानी बनी वैश्याओं के दलालों के ईशारों पर नृत्य करने लगी। इस तरह राजनीतिक दृष्टि से देश पदाक्रान्त, जर्जर और विकृत सामन्तवाद की इच्छाओं का पतन प्रतीक बन गया।

1.1.3.2 सामाजिक परिस्थितियाँ :

इस समय सामाजिक स्थिति बहुत खराब थी। समाज दो वर्ग में विभक्त था–उत्पादक और उपभोक्ता वर्ग। उपभोक्ता वर्ग में राजा से लेकर उनके दरबान, दास तक शामिल थे तो उत्पादक वर्ग में कृषक और श्रमजीवी थे। उपभोक्ता वर्ग उत्पादक वर्ग के श्रम पर ऐश्वर्य–भोग का जीवन व्यतीत कर रहा था। इनके अतिरिक्त विद्वानों का एक और वर्ग था जो अपनी जीविका के लिए उच्च वर्ग से जुड़े हुए थे। उनमें उच्च वर्ग की आकांक्षाएं और संस्कार थे पर उनका सम्बन्ध निम्न और मध्य वर्ग से था।

इस काल की कविता का सम्बन्ध बादशाहों, राजाओं और सामन्तों की काम–क्षुधा की पूर्ति से था।

शाहजहाँ के काल में उनके अमीरों और कर्मचारियों का जीवन भी ऐश्वर्यपूर्ण था। प्रान्तीय सामन्त भी उनकी नकल करते हुए रस रंग में डूबे रहते थे। उनकी विलासिता की सबसे बड़ी विशेषता थी– खोखलापन। वैभव प्रदर्शन की भावना ने विलासिता को जन्म दिया। विलासिता के रंग में रंगे ये धनी वर्ग शरीर भोग को ही सब कुछ मानते थे। मदिरा और नारी–भोग में पूरा राज्य, साम्राज्य डूबा रहता था।

उत्पादक वर्ग की हालत दयनीय थी। उन पर ''जजिया कर'' क्रूरता का ही उदाहरण है। गरीबी और अशिक्षा का बोलबाला था। जनता अन्धविश्वासों और रूढ़ियों में जकड़ी हुई थी वे अपनी कुवांरी कन्याओं और बहू बेटियों को शासक वर्ग और उनके मातहतों से बचाने के लिए बाल विवाह करते थे। उन्हें पर्दे में रखते थे, विधवाओं को जीवित जला दिया जाता था। शुरू में यह मजबूरी थी बाद में यही प्रथा बन गई। ऊपर से महामारी, अकाल से जीवन दूभर हो गया। दरबार छल कपट के केन्द्र बन गये थे। वैश्याएँ सामन्तों पर शासन करती थी।

इन सब बातों का कविता पर प्रभाव पड़ा और कविता कामिनी नख–शिख वर्णन कटि कटाक्ष की डोर में बंध कर रह गई।

1.1.3.3 धार्मिक परिस्थितियाँ :

धार्मिक दृष्टि से यह युग सभ्यता और संस्कृति के पतन का युग था। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ ने अपनी अपनी उदारवादी नीति के कारण हिन्दु मुस्लिम में जो सहिष्णुता, प्यार, धार्मिक एकता बनाई थी वह औरंगजेब की कट्टरता के कारण समाप्त हो गई।

धर्म के नाम पर बाह्य आडम्बर और भोग विलास के साधन जुटाये जाने लगे। विट्ठल नाथ की मृत्यु के बाद उनके बेटों ने विभिन्न शहरों में अपनी अपनी गद्दियाँ बना लीं जो विलास के केन्द्र बन गईं। ऐसे वातावरण में सूर की राधा और तुलसी की सीता एक साधारण रमणी बन कर रह गई। धर्मस्थान भ्रष्टाचार के केन्द्र बनते जा रहे थे। मन्दिरों में पायल की झन्कार और तबले की थाप पनपने लगी। पुजारी कामुक हो चले थे। अन्ध विश्वास के कारण जनता, पुजारी, पीर, मुल्लाओं के पास जाते थे और शोषण का शिकार होते थे। कृष्ण–लीला और राम–लीला का प्रचलन बढ़ा। इस प्रकार जनता की धर्म भावना उनके मनोविनोद का साधन भी बन गई। राधा कृष्ण राम सीता की आड़ में लौकिक नायक–नायिका के लुका–छिपी नाज–नखरे, कटि–कटाक्ष का खुलकर चित्रण हुआ ऐसे में 'सूर सागर' के स्थान पर 'ब्रज विलास' और 'चंडी कुच पंचाशिका' जैसे घोर श्रृंगार के विकृत उदाहरण सामने आए। तात्पर्य यह है कि यह युग विलास में डूबे राजा महाराजाओं, सामन्तों धनिक वर्गों और उनके दासों तक के कच्चे चिट्ठे का खुलासा करता है।

1.1.3.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ :

मुगल सम्राट शाहजहाँ की कला और साहित्य के प्रति अत्यधिक रूचि थी। उसके दरबार में अच्छे कवियों और कलाकारों का बड़ा सम्मान था अतः इस काल में कुछ अच्छे साहित्य की भी रचना हुई।

इस समय मुगल दरबार की भाषा फारसी थी। उनके मुकाबले में हिन्दी कवियों को उतरना था जो बहुत कठिन था। फारसी में लैला मजनू, शिरी फरहाद, गुलो–बुल के प्रेमपूर्ण किस्सों में मांसलता और चंचलता थी अतः रीतिकालीन कवियों को भी दरबार में अपना स्थान बनाने के लिये राधा कृष्ण के चरित्र में यही मांसलता और चंचलता का रंग भरकर प्रतियोगिता में खड़ा होना पड़ा। वैसे औरंगजेब की

कट्टरता के कारण हिन्दुत्व की रक्षा हेतु राजस्थान के ओरछा, कोटा, बूदी, जयपुर और जोधपुर आदि नरेशों ने अपने दरबारों में कवियों और कलाकारों को सरंक्षण दिया इससे शृंगारिक साहित्य हिन्दी में, हिन्दू दरबार में भी फलने फूलने लगा किन्तु कठोर प्रतियोगिता के कारण केवल चमत्कारपूर्ण, पांडित्य प्रदर्शनयुक्त साहित्य की ही सृष्टि अधिक हुई।

इसके अतिरिक्त कला एवं संगीत में विकास के अनुपम उदाहरण मिलते हैं।

1.1.4 प्रवृत्तियाँ :

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल एक महत्त्वपूर्ण काल है। आदिकाल में चारण–भाट कवियों के द्वारा तत्कालीन राजा–महाराजाओं की वीरता से परिपूर्ण स्तुति पद लिखे गये थे भक्तिकाल में सात्विकता, तन्मयता और उदात्त चेतना का जो रूप साहित्य में दिखाई पड़ता है वैसा रीतिकाल में नहीं पाया जाता। मुगल सत्ता में हताश देशी राजाओं और सामन्तों ने सुरा–सुन्दरी में स्वयं को डूबो कर रख दिया। यही कारण है कि रीतिकाल का साहित्य घोर विलासिता का साहित्य माना जाता है। इस पाठ में हम रीतिकाल की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों का अध्ययन करेंगे। इस अध्ययन के बाद आप :

* रीतिकालीन परिस्थितियों को पहचान सकेंगे।
* रीतिकाल की साहित्यिक विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे,
* रीतिकाल के साहित्य का शिल्प पक्ष समझा सकेंगे
* रीतिकालीन साहित्य और उनके आचार्य कवियों का विवेचन कर सकेंगे।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल का समय सं. 1700 से 1900 तक का माना जाता है। इस युग का रीतिकाव्य पूर्णतः इहलौकिक एवं भौतिक दृष्टिकोण से रचा गया। दरबारी आश्रय में रहने वाले कवियों के यह हित में था कि वे वही साहित्य रचे जो आश्रयदाता को रूचिकर लगे। सभी छोटे, बड़े राजा–महाराजा, सामन्त सुरा सुन्दरी और विलासिता में आकण्ठ डूबे रहते थे अतः इस समय का साहित्य भी काम, सुरा और सुन्दरी के आस पास चक्कर लगाता रहा। इस तरह कवियों ने 'स्वान्तः सुखाय' के लिए नहीं अपितु धन प्राप्त करने के लिए 'स्वामिनः सुखाय' काव्य रचे और हर कविता या दोहे पर पुरस्कार स्वरूप अशर्फियों की चाह रखी। आगे हम रीतिकाल में रचित साहित्य की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे–

रीतिकालीन साहित्य की प्रवृत्तियाँ -

रीतिकाल यद्यपि भोग विलास में लिप्त राजा–महाराजाओं का युग था तथापि ये देशी राजा–महाराजा और सामन्त स्वयं को दरबार में विज्ञ रसिक सिद्ध करने के लिए कुछ ऐसे उपाय भी चाहते थे जो उन्हें काव्य के संवाद में सहायता दे सकें। ऐसे में रीतिग्रन्थ उनकी इस कमी को पूरा करने में उपयोगी सिद्ध हुए। लक्षण ग्रंथों के अतिरिक्त इस युग में नीति, भक्ति, शृंगार वीर काव्य, स्वच्छन्द काव्य भी खूब रचे गये। संक्षेप में रीतिकाल की विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

1. रीति ग्रन्थों का निर्माण :

रीति ग्रन्थों का निर्माण इस काल की प्रमुख विशेषता है। रीति ग्रन्थ का मतलब उन लक्षण ग्रंथो से है जिसमें काव्यांगों का लक्षण देकर उदाहरण स्वरूप स्वनिर्मित पद दिये जाते थे। उन्होंने परवर्ती संस्कृत आचार्यों के बोधगम्य शैली में लिखे गये लोकप्रिय ग्रन्थों का ही आधार लिया किन्तु संस्कृत आचार्यों के समान इन्हें

सफलता नहीं मिली। संस्कृत में आचार्य कर्म और कवि कर्म दो पृथक् कर्म थे जिन्हें निभाने वाले संस्कृत में दो भिन्न श्रेणियों के व्यक्ति रहे हैं। किन्तु रीतिकाल में इन दोनों कर्मों को एक ही व्यक्ति के द्वारा निभाने का प्रयत्न किया गया है। इससे काव्य में सूक्ष्म विवेचन और विश्लेषण पर गहरा प्रभाव पड़ा क्योंकि रीतिकालीन विद्वानों में उस प्रौढ़ और सन्तुलित विवेचन शक्ति का अभाव था जो एक आचार्य के लिये आवश्यक होता है। इसलिए इन्हें आचार्य की कोटि में रखने पर आपत्ति की गई है। वस्तुतः ये विद्वान् केवल कवि थे किन्तु राजदरबार में आदर सम्मान और इनाम पाने के लिए इन्हें लक्षण ग्रन्थ लिखने पड़े। जबकि काव्यशास्त्र में इनका अपना ज्ञान भी पूरा नहीं था। देखा जाए तो ये आचार्य थे ही नहीं, और न ही इनका उद्देश्य आचार्यत्व कर्म को गम्भीरता से करने का था। ये तो केवल कवियों और रसिकों को काव्यशास्त्र के विषय से परिचित कराना चाहते थे। ये राजा महाराजा और सामन्त ऐसे विलासी रईस थे जिनमें तर्क की सूक्ष्मता को समझने की न शक्ति थी न अवकाश। इस काल के कवियों ने इनके छिछोरे मनोरंजन की आवश्यकता की पूर्ति की। ये कवि आचार्य सहृदय और कुशल कवि थे। इनका मूल उद्देश्य कविता करना था काव्यांगों का शास्त्रीय निरूपण नहीं। फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इन कवियों ने आचार्य बनने की धुन में अपनी रचनाओं के द्वारा रस, अलंकार, छन्द आदि के अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

2. शृंगार वर्णन :

इस काल के साहित्य में शृंगार की प्रधानता है। इस समय का सामन्त वर्ग कामदेवता का उपासक था और नारी में काम रति का स्वाद ही उन्हें प्रिय था। इसलिये ये अपने जीवन में ही नहीं बल्कि कविता में भी शृंगार पसंद करते थे। अतः रीतिकालीन कवियों ने आश्रयदाताओं की रूचि और पसंद के अनुरूप शृंगार को कविता का आधार बनाया। मुक्त काव्य धारा को छोड़कर समुचा शृंगार साहित्य बीमार और विकृत सा दिखाई पड़ता है। इसके अनेक कारण थे। इन कवियों को भक्तिवाद से पूर्व की चली आ रही परम्परा का निर्वाह करने का भी चाव था और उन्हें इस तरह की तैयार सामग्री मिल भी रही थी। रीतिकालीन कवियों को भक्तिकालीन कवियों ने राधाकृष्ण के नाम पर भरपूर सामग्री दी—निर्गुण सन्तों ने ''रति इह तन में संचरे'' कहकर प्रेम को जीवन का सार बताया, प्रेममार्गी सूफी कवि भी लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना कर चुके थे, कृष्ण भक्ति काव्य और रामभक्ति काव्य में भी रसिक भाव की प्रतिष्ठा हो जाने के कारण शृंगार की रसराज के रूप में प्रतिष्ठा हो चुकी थी। संस्कृत काव्य शास्त्र में भी रस, नायिका भेद, अलंकार आदि की शास्त्रीय आधार भूमि इन कवियों को प्राप्त हो गई। ऐसे में रीतिकालीन राजा—महाराजाओं—सामन्तों और रईसों के मादक सुरा—सुन्दरियों में डूबे विलासपूर्ण वातावरण ने रीतिकालीन कवियों के लिए शृंगार—चित्रण का मार्ग और भी साफ कर दिया ऐसे में इन कवियों ने प्रेम का बाह्या रूप ग्रहण कर शृंगार और रति के नग्न—अश्लील उदाहरण प्रस्तुत किये। उनके काव्य में राधा कृष्ण और राम सीता गलियों में बसे साधारण नायक नायिका भर रह गये। ऐसे में यह उक्ति ठीक है—

> आगे के सुकवि रीझिहे तो जानो कविताई
> न तू राधिका—कन्हाई सुमिरन को बहानो है।

अर्थात् उनकी कविता से यदि रस मर्मज्ञ रीझ गये तो कविता सफल हुई अन्यथा राधा कृष्ण की भक्ति का दोहा तो है ही।

इन कवियों के काव्य में शृंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग एवं उनके अन्तर्गत आने वाले भावों, रसों, दशाओं का खुलकर चित्रण किया है। विभिन्न त्यौहारों, पर्वों के माध्यम से नायक नायिका का मिलन कराने

में इनका मन खूब रमा है। नायिका का नखशिख वर्णन तो मात्र परम्परा का निर्वाह करने के लिए ही किया गया है। वियोग पक्ष के चित्रण में दसों दशाओं, स्मृति–चित्रों, मान आदि के साथ कहीं कहीं पर अध्यात्मक वर्णन भी मिलता है :

इत आवति चलि जात उत
चलि छ सातक हाथ
चढ़ि हिड़ौले सी रहि
लगि उसासनु साथ

नायिका विरह की आग में जलकर इतनी पतली हो गई है कि मौत उसे चश्मा लगाकर भी नहीं खोज पाती, गुलाब जल पड़ते ही सूख जाता है। सखियां कपड़े गीले करके ही उसके पास जा पाती है इत्यादि।

3. नारी चित्रण

रीतिकालीन कविता का विकास मुख्यतया राजदरबार में, सामन्तीय वातावरण में हुआ था। मुगल शासन की निरंकुश सत्ता के सामने देशी राजाओं महाराजाओं का तेज आहत हो चुका था। ऐसे समय में राज्याश्रित कवियों ने नारी के विलासात्मक, रंगीले, भड़कीले चित्र उतार कर मानों अपने स्वामियों के विषाद और हताशा को दूर करने का प्रयास किया था। उनके कुच–कटाक्ष हाव–भाव श्रृंगार–सज्जा, अंग–प्रत्यंग के बारीक से बारीक नग्न, अश्लील चित्र कविता में बांधते रहे। उनके सामने नारी मात्र भोग विलास का एक उपकरण मात्र थीं उनकी नायिका 'भरे भवन में' नायक से आँखें चार करने में, कभी लाल द्वारा उड़ाई जा रही पतंग की छाया को चूमती हुई दौड़ने में सुख पा रही है। मानो उसका कोई और रूप इस दुनिया में है ही नहीं। न वह जननी है और न गृहणी, न बहन है न देवी। बस एक छिछौरी प्रेमिका है जो नायक से मिलने का कोई भी अवसर खोना नहीं चाहती। इसीलिए आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी ने रीतिकालीन श्रृंगार भावना में रूग्णभावना का मिश्रण कहा है। रीतिकाव्य में नारी का मांसल, उत्तेजक, चंचल रूप ही अधिक चित्रित हुआ है।

4. प्रतियोगिता की भावना

रीतिकालीन कवियों में प्रतिस्पर्धा की भावना प्रबल थी। अपनी विद्वता, सर्वोत्कृष्टता को साबित करने के लिये उन्हें कभी कभी घिसे हुए, धुरूधंर, उर्दू फ़ारसी और हिन्दी कवियों से सामना कर अपना स्थान बनाना पड़ता था। प्रतिस्पर्धा की यह भावना संस्कृत आचार्यों में भी पाई जाती थी किन्तु उसमें कुशल गम्भीरता थी जो रीतिकाल में खत्म होने लगी थी। हिन्दी कवियों के सामने अपनी जीविका का प्रश्न भी था जिसे वे तभी पूरा कर सकते थे जब वे राजदरबार में अपना स्थान बना लें। रीतिकालीन राजा–महाराजा अपने आश्रित कवियों, आचार्यों को ज़मीन, ज़ायदाद, धन, अशर्फी आदि पुरस्कार स्वरूप देते रहते थे जिससे उनका पूरा परिवार पलता था, इसीलिए ये कवि अपने पाण्डित्य–प्रदर्शन में जी तोड़ प्रयास करते थे।

5. नीति-भक्ति काव्य :

नीति, भक्ति काव्य का सृजन भी रीतिकाल की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। संस्कृत साहित्य में नीति काव्य की समृद्ध परम्परा थी। बाद में भक्तिकाल में भी कबीर, तुलसी, रहीम आदि की सूक्तियाँ मिलती हैं। इन सबका प्रभाव रीतिकालीन कवियों पर भी पड़ा। रीतिकाल में वृन्द, गिरिधर, घाघ, बेताक, दीनदयाल

गिरि आदि के द्वारा रचित नीतिपरक रचनाएँ मिलती हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने इसे कविता न कह कर सूक्ति साहित्य कहा है। क्योंकि इन सूक्तियों में विषय की विविधता और चमत्कार का पुट होते हुए भी रस की अनुभूति का सर्वथा अभाव पाया जाता है।

इसी प्रकार रीतिकाव्य में भक्ति विषयक रचनाएँ खूब मिलती हैं पर इन सबके आधार पर रीति कवि को न तो अनन्य भक्त कहा जा सकता है न राजनीतिनिष्णात। भक्ति के विषय में नीचे की पंक्ति में स्पष्ट संकेत मिलता है–

रीझि है सुकवि तो जानो कविताई
न तु राधिका सुमरन को बहानो है।।

रीतिकालीन कवि का मुख्य प्रयोजन था किसी न किसी रसिक को रिझाना। पर न रीझने की स्थिति में राधा कृष्ण की भक्ति ही मान ली जाए, तो क्या बुरा है।

वस्तुतः रीतिकाल अनेक स्वादों का युग था जैसा कि बिहारी ने लिखा है –

करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सवाद

वस्तुतः प्रतियोगिता की भावना के कारण रीतिकालीन कवि को राजदरबार में स्वयं को स्थापित करने के लिए अपनी बहुविज्ञता का प्रदर्शन करना पड़ता था। इसलिये उनकी कविता में नीति, भक्ति, राजनीति, ज्योतिष आदि से सम्बन्धित पद मिलते हैं। भक्ति काव्य के लिए कहा जा सकता है कि इस युग में राधा कृष्ण वैसे भी सामान्य नायक नायिका के रूप में परिणत हो चुके थे यह भी कह सकते हैं कि राधा कृष्ण की भक्ति को उन्होंने अपनी ढाल के रूप में प्रयुक्त किया हो, डा. नगेन्द्र ने तो भक्ति काव्य को रीतिकालीन कवियों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता माना है। वे कहते हैं ''जब कवि अतिशय श्रृंगार वर्णन के कारण मन में अपराध भावना का अनुभव करता है, तो राधा कृष्ण का स्मरण उनके भीरू मन को आश्वासन देता था और सामाजिक कवच का काम भी करता था।''

वस्तुस्थिति यह है कि रीतिकाल में कवियों ने विशेषकर रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने अनेक विषयों पर सुन्दर कविताएं प्रस्तुत कीं।

6. वीर काव्य :

रीतिकाल में श्रृंगार रस की रचनाओं के साथ साथ वीर रस की धारा भी मंद–मंचर गति से बह रही थी। शाहजहाँ के शासनकाल में सर्वत्र सुख शान्ति का साम्राज्य था पर औरंगजेब की धर्मांधता और कट्टरनीति ने इस शान्ति को अशान्ति में बदल दिया। उनके अत्याचारों का विरोध करने के लिये दक्षिण में शिवा जी, पंजाब में गुरू गोबिन्द सिंह और बन्दा बैरागी, राजस्थान में महाराज जसवंत सिंह और दुर्गादास, मध्य प्रदेश में छत्र साल आदि वीर राजपूतों ने तलवारें उठा लीं। इनकी वीरता को प्रोत्साहित एवं सजग बनाये रखने के लिए भूषण, सूदन, पद्माकर, गोरे लाल, गुरू गोबिन्द सिंह जी ने ओजभरी वाणी में काव्य निर्माण किया और तत्कालीन जन–जागरण के प्रहरी बनकर काव्यक्षेत्र में उतरे। इन वीर रस के कवियों में राष्ट्रीयता का स्वर प्रधान है। वीर रस के सभी भेद जैसे –दानवीर, युद्धवीर, दयावीर, धर्मवीर आदि का अंकन इस युग के वीरकाव्य में सफलता पूर्वक हुआ। इन वीर काव्यों की संख्या कम है अनुसंधान द्वारा इनकी संख्या पंजाब में रचित वीर काव्य 25 तथा अन्य स्थानों के लगभग 90 मानी जाती है। पंजाब में रचित वीर काव्य गुरुमुख लिपि में निबद्ध है। इन सभी वीर काव्यों में

तत्कालीन राजनीतिक चेतना तथा युगबोध पर्याप्त मात्रा में है। संख्या में कम होते हुए भी हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा में इनका महत्वपूर्ण योगदान स्वीकार किया जाता है।

7. स्वच्छन्द काव्य

रीतिकाल के अधिकांश कवि या तो लक्षण ग्रंथ लिखते थे या इन्हें आदर्श मानकर काव्य रचना करते थे। इस प्रवृति के अतिरिक्त एक अन्य धारा यानि स्वच्छन्द काव्यधारा भी चल रही थी। इन कवियों को रीतिमुक्त या स्वच्छन्द काव्य धारा के कवि कहा गया है। इन कवियों ने न तो लक्षण ग्रंथ लिखे और न ही उनको आधार बनाया। इन्होंने रीतिकालीन समस्त रूढ़ियों, परम्पराओं का त्याग कर, नवीनता एवं मौलिकता से परिपूर्ण काव्य रचना की। इन काव्यों में नतोअलंकारों का बोझ है, न सुरा–सुन्दरी की अश्लीलता। इनका श्रृंगार–चित्रण स्वस्थ, संयत और स्वच्छ है। इनके प्रेम में कहीं भी चतुराई नहीं है, न छल–कपट। सर्वत्र एकनिष्ट, त्यागपूर्ण, प्रणय ही चित्रित हुआ है। घनानन्द, सूदन, बोधा, ठाकुर आलम आदि कवियों ने अपने प्रेम की पीर को स्वच्छन्द काव्य में अभिव्यक्ति दी है। घनानन्द के एक उदाहरण में प्रेम का वर्णन है।

अति सूधो सनेह को मारग है
जहाँ नेकु सयानक बांक नहीं

इन कवियों ने प्रेम को तलवार की धार पर चलने के समान माना है –

यह प्रेम को पंथ कराल है जू
तलवार की धार पै धावनौ है।

बेताल कवि, घाघ कवि, वृन्द कवि गिरधर कविराय जैसे कवियों ने नीतिपरक, सूक्तिपरक रचनाएं की जो लोक समाज से सम्बद्ध हैं। ब्रहमज्ञान, वैराग्य–भक्ति के भी पद्य लिखे गये। इन कवियों ने मुक्तक काव्य भी लिखे और छोटे छोटे प्रबन्ध काव्य भी लिखे। गौरेलाल सूदन, गुरू गोबिन्द सिंह जी का नाम इसमें लिया जा सकता है। त्यौहार, पर्व, शिकार, जलविहार आदि का चित्रण कर इन कवियों ने अपनी संस्कृति का भी गुणगान किया है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि इस काव्यधारा में प्रत्येक कवि की रचना में सभी प्रकार से रीतिमुक्त धारा की स्वच्छन्दता की विशेषताएं प्रकट नहीं होती कुछ कवियों पर रीतिबद्धता का प्रभाव भी मिलता है फिर भी इनकी काव्यगत विशेषता में रीतिबद्ध काव्य और कवियों की अपेक्षा अनुभूति की गहनता विरह की मार्मिकता अधिक मिलने के कारण इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

1.1.5 शिल्प पक्ष

1. रीतिकाल की प्रमुख साहित्यिक भाषा ब्रज थी। ब्रजभाषा मधुर भाषा है। इसमें कोमल भावों की अभिव्यक्ति की अपार क्षमता विद्यमान होने के कारण रीतिकालीन कवियों ने इसका भरपूर प्रयोग किया। इसके कई कारण थे–एक तो ब्रज भाषा की प्रकृति मधुर है, दूसरे इस समय गद्य का प्रचलन अपनी शैशव अवस्था में था। तीसरे ब्रजभाषा के अतिरिक्त किसी और भाषा में रचना करने वाले को उतना सम्मान नहीं मिल पाता था। इन अनेक विशेषताओं के कारण यह काल ब्रजभाषा का चरमोन्नति का काल था इसीलिए कवि चाहे पंजाब का हो या बुंदेलखण्ड का, झांसी का हो या राजस्थान का सभी ने ब्रजभाषा में काव्य रचना की। पंजाब के गुरू गोबिन्द सिंह और आचार्य अमीरदास बुंदेलखण्ड के बिहारी

और केशव इसके उदाहरण है। ब्रजभाषा में अवधी, बुन्देलखण्डी, राजस्थानी आदि भाषाओं के अतिरिक्त अरबी, फारसी, तुरकी भाषाओं के अनेक शब्द खूब प्रयुक्त हुए हैं। इस प्रवृति का दुष्परिणाम यह निकला कि शब्दों को तोड़ मरोड़ कर मनमाने प्रयोग होने लगे। रीतिबद्ध कवियों की कविता में लिंग एवं कारक सम्बन्धी दोष अधिक पाये जाते हैं जबकि रीतिमुक्त कवियों ने भाषा का विकृत प्रयोग नहीं किया। उन्होंने भाषा के शुद्ध प्रयोग और अर्थ क्षमता का पूरा पूरा ध्यान रखा, इसीलिए धनानन्द, बोधा, ठाकुर आदि रीति मुक्त काव्य धारा के कवियों की भाषा अपेक्षाकृत परिनिष्ठित ब्रज भाषा का सुन्दर नमूना मानी जाती हैं।

2. छन्द

रीतिकाव्य दरबारी मनोवृत्ति का काव्य था इसलिए इस युग में मुक्तक काव्यरचना की प्रचुरता रही। मुक्तक काव्य के लिए कवि को कुछ चुने हुए छन्दों पर ही आश्रित रहना पड़ता है। इसलिए इस युग में कवित, सवैया, छप्पय, दोहा, सोरठा, बरवै और रोला जैसे छन्द ही प्रचलित हुए। यहाँ पर श्रृंगार चित्रण के लिए सवैया छन्द तो वीर रस के लिए अधिकतर कवित्त, सवैया छन्द तो वीर रस के लिए अधिकतर कवित्त, भक्ति नीति के लिए दोहा छन्द का खूब प्रयोग हुआ। चिन्तामणि का छन्द विचार, मतिराम की वृत कौमुदी, भिखारीदास का छन्दोर्ण एवं पिंगल, अमीरदास का वृत चन्द्रोदय आदि इस युग के प्रसिद्ध छन्दशास्त्र हैं।

3. अलंकार

इस युग की मुख्य विशेषता अलंकारों का भरपूर प्रयोग है शायद इसीलिए मिश्र बन्धुओं ने इस युग को 'अलंकृत काल' का नाम दिया। यद्यपि यह नाम बहुमत से स्वीकृत नहीं हुआ परन्तु इस युग में रचे गये लक्षण और लक्ष्य दोनों प्रकार के ग्रन्थों में अलंकारों को ही प्रधानता मिलती रही। इस समय चमत्कार प्रिय होने के कारण श्लेष, यमक और अनुप्रास का प्रयोग सबसे ज्यादा हुआ। बिहारी द्वारा प्रयुक्त यमक अलंकार का चमत्कार देखते बनता है–

तो पर वारौ उरवसी, सुनि राधिके सुजान
तू मोहन के उरबसी, है उरबसी समान।

केशवदास की प्रसिद्ध उक्ति ''भूषण बिनु न विराजई कविता वनिता मित्त'' से रीतिकालीन कवियों की अलंकारप्रियता का ही संकेत मिलता है। किन्तु कहीं कहीं रीतिकवियों ने अलंकारों का इतना अधिक और व्यर्थ का प्रयोग किया है कि वे काव्य सौन्दर्य को बढ़ाने की अपेक्षा विकृत करते हैं। केशव को तो अति अलंकारप्रियता और दूर की कोड़ी पकड़ने के प्रयास के कारण ही ''कठिन काव्य का प्रेत'' कहा जाता है। वस्तुत ये आचार्य नहीं, बल्कि कवि थे और इनका काव्य–शास्त्रीय ज्ञान अधूरा था। इनके लक्षणों और उदाहरणों में पर्याप्त त्रुटियाँ हैं। इनमें से ज्यादातर कवियों ने संस्कृत ग्रन्थों का अनुसरण ही किया कोई मौलिक सूझ बूझ का परिचय नहीं दिया, फिर भी अलंकारों का प्रयोग जितना इन कवियों ने किया, कविता कामिनी को अलंकारों से सजाया सवांरा वह प्रशंसनीय है।

4. काव्य रूप

रीतिकाल में काव्य रूपों की पर्याप्त विविधता पाई जाती है। प्रबन्ध, मुक्तक, सतसई साहित्य तथा शतक आदि सभी शैलियों में काव्य रचना होती रही पर इस युग का प्रधान काव्य रूप मुक्तक ही रहा। इसके

अनेक कारण थे एक तो राजा महाराजाओं के पास समय कम होता है। ऐसी स्थिति में छोटे छन्दों में दो चार मुक्तक सुनाकर आश्रयदाता की वाहवाही पाई जा सकती थी और ईनाम आदि प्राप्त किये जा सकते थे। दूसरे शृंगार रस की प्रधानता ने जन जीवन और समाज के दूसरे पक्षों को उपेक्षणीय बना रखा था। तीसरे मुक्तक काव्य में अर्थ की दृष्टि से पूर्वापर सम्बन्ध नहीं होता परन्तु पाठक को स्वतन्त्र रूप से रसलीन करने की क्षमता होती है। चौथे दरबार में अपनी कला का चमत्कार दिखाने, कवियों की परस्पर होड़ में एक दूसरे को परास्त करने में मुक्तक शैली का प्रभाव अधिक पड़ता था। इसलिए राजदरबारों में अपनी प्रतिभा का सिक्का जमाने के लिए अधिकांश कवि मुक्तक रचना को ही प्रश्रय देते रहे।

मुक्तक काव्य के अतिरिक्त इस समय प्रबन्ध काव्य भी लिखे गये, इनमें सबलसिंह का 'महाभारत' ब्रजबासीदास का 'ब्रजविलास', सूदन का 'सुजानचरित', जोधराज का 'हम्मीर रासो', गोरे लाल का 'छत्रसाल प्रकाश' आदि उल्लेखनीय प्रबन्ध काव्य थे।

5. प्रकृति चित्रण

विश्व की सभी भाषाओं में प्रकृति चित्रण की परम्परा रही हैं। संस्कृत साहित्य प्रकृति चित्रण से भरा पड़ा है। हिन्दी में जायसी की नायिका नागमति के विरह से ही कौए काले हो गए। तुलसीदास के मृग, मीरा के पपीहे, कोयल, सूरदास के भ्रमर आदि मनुष्य के किसी न किसी संदेश के वाहक हैं। रीतिकालीन कवियों ने आदिकाल से चली आ रही प्रकृति वर्णन की इस परम्परा से स्वयं को जोड़ा है। उनका प्राकृतिक वर्णन उद्दीपन रूप में ही अधिक उपलब्ध है। प्रकृति चित्रण में बारहमासा, त्यौहार पर्व, मेला, जलविहार, आखेट, होली, फाग आदि का थोड़ा बहुत वर्णन मिलता है। हां सेनापति का प्रकृति चित्रण मनोहारी बन पड़ा है। वस्तुतः आश्रयदाताओं की रूचि की उपेक्षा करके कोई कवि दरबार में स्वयं को स्थापित नहीं कर सकता था और राजाओं सामन्तों की रूचि का केन्द्र नारी सौन्दर्य था अतः इस समय का प्राकृतिक वर्णन बहुत थोड़ा और सामान्य स्तर का ही रहा। कुछ उदाहरण है–

बिहारी कहते हैं –

सघन कुंज छाया सुखद शीतल सुरभि समीर
मन कहै जात अजौं वहैं वा जमुना के तीर।

इसी प्रकार पद्माकर की होली (होरी) का चित्रण सुन्दर बन पड़ा है–

छोनि पितम्बर कम्मर ते सु बिदा दई मीढ कपोलन रोरी
नैन नचाए कह मुस्काय, लला फिर आइयो खेलन होरी।

1.1.6 सारांश :

रीतिकालीन परिस्थितियों का अवलोकन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि यह काल एक तरह से भोग विलास का काल था। इस युग में नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ, अन्धविश्वासों और बाह्याडम्बरों का बोलबाला हुआ, राजा और प्रजा दोनों की शृंगारिकता के प्रति आसक्ति बढ़ी। कवियों ने भी युगानुरुप और आश्रयदाताओं की रूचि के अनुरूप काव्य रचे। रीतिकालीन कवियों ने इसी काल में आचार्य और कवित्व दोनों कर्म निभाने का प्रयास किया और यह परम्परा पूरे दो सौ वर्षों तक जारी रही।

इस प्रकार रीति काव्य दरबारी आश्रय में विकसित हुआ। इस समय लक्षण ग्रन्थ का निर्वाह संस्कृत काव्यशास्त्र को आधार बना कर किया गया। नख शिख वर्णन, नायक नायिका भेद आदि विषयों पर इस युग के श्रेष्ठ कवि अपनी प्रतिभा का ह्रास कर रहे थे। ये कवि काव्यशास्त्र के ज्ञाता नहीं थे किन्तु ज्ञाता होने का स्वांग रच रहे थे। इस काल में कथ्य की अपेक्षा शिल्पपक्ष में कवियों का मन अधिक रमा है। भाषा को अलंकारों, मुहावरों को सजाया गया। इससे भाषा की शक्ति में विस्तार एवं विकास अवश्य आया था परन्तु भाषा का रूप विकृत हो चला, कारक चिन्हों, लिंग सम्बन्धी दोषों से भाषा कुरूप हो गई। ऐसे में घनानन्द, ठाकुर आदि कवियों की भाषा परिनिष्ठित ब्रज भाषा का अपवाद बन कर रह गयी।

1.1.7 अभ्यास प्रश्नावली :

1. रीतिकाल के नामकरण पर विभिन्न विद्वानों के द्वारा दिये गए नाम और उनके औचित्य पर विचार कीजिए।
2. रीतिकालीन परिस्थितियों का सामान्य परिचय दें।
3. रीतिकाल की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करो।
4. रीतिकालीन साहित्य के शिल्प पक्ष का विवेचन करें।

1.1.8 शब्दावली :

काव्यांग	–	काव्य के अंग
उष्ण	–	तीखा
अन्तर्मुखी	–	भीतर की ओर जाने वाली
स्वनिर्मित	–	स्वयं के द्वारा निर्मित
प्रस्तुतिकरण	–	प्रस्तुत करने का ढंग
अवलोकन	–	दृष्टिपात
युगानुरूप	–	अपने समय के अनुरूप
स्वनिर्मित	–	खुद के द्वारा बनाये हुए
स्वकीया	–	अपने पति से अनुराग करने वाली नायिका
परकीया	–	नायिका, प्रेमिका
परिपूर्ण	–	पूरा किया हुआ
प्रति स्पर्धा	–	बराबरी, होड़
मीढ कपोलन	–	गालों पर लगाकर
उपेक्षणीय	–	उपेक्षा के योग्य

पाठ संख्या : 1.2 **लेखिका : डॉ. रजिन्दर कौर अनेजा**

हिन्दी भाषा : उद्‌भव और विकास

रूपरेखा :

1.2.0 उद्देश्य
1.2.1 भूमिका
1.2.2 हिन्दी भाषा की उत्पत्ति–सामान्य परिचय
1.2.3 भाषा के अर्थ में हिन्दी का प्रयोग
 1.2.3.1 संस्कृत भाषा के रूप
 1.2.3.2 हिन्दी की उत्पत्ति के विविधसोपान
1.2.4 हिन्दी की मूल आर्य भाषाएं
1.2.5 सारांश
1.2.6 अभ्यास प्रश्नावली
1.2.7 शब्दावली

1.2.0 उद्देश्य :

विभिन्न भारतीय भाषाओं के संदर्भ में हिन्दी भाषा का विशेष महत्त्व है। यह विश्व की असंख्य भाषाओं में से एक है। किसी भी भाषा का सम्पूर्ण अध्ययन एक विज्ञान है जिसमें सबसे पहले उसकी उत्पत्ति के मूल स्त्रोत को जानना आवश्यक होता है। हिन्दी भाषा के महत्त्व को उसके प्रयोग, विस्तार एवं व्यापक भूमिका की दृष्टि से समझा जा सकता है। इस इकाई में हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का अध्ययन किया जाएगा। इसे पढ़ने के बाद आप समझ सकेगें कि :

– भाषा के अर्थ में 'हिन्दी' का प्रयोग किस प्रकार होता है,
– हिन्दी भाषा की मूल उत्पत्ति संस्कृत भाषा से हुई,
– संस्कृत भाषा के रूप क्या हैं,
– हिन्दी भाषा की उत्पत्ति एवं विकास किस प्रकार हुआ, और हिन्दी भाषा के विकास के प्रमुख सोपान क्या हैं।

1.2.1 भूमिका :

भारत में कई भाषाएं है। ये सभी भाषाएं अपनी–अपनी जगह महत्त्वपूर्ण हैं और साहित्यिक दृष्टि से सम्पन्न हैं। हिन्दी भाषा एक विशाल देश की एकता का सूत्र है और सभी भाषाओं के बीच एक सेतु है। यह देश की राजभाषा है, उच्च शिक्षा के माध्यम की भाषा है और राष्ट्रीय स्तर पर सम्पर्क की भाषा है। यह एक आधुनिक भाषा है जो संस्कृत भाषा से विकसित हुई और विभिन्न–बोलियों के माध्यम से विस्तार पाकर एक आधुनिक भाषा बनी। हिन्दी भाषा के स्वरूप को जानने के लिए इसकी उत्पत्ति पर विचार करना आवश्यक है। इसके विकास का इतिहास लगभग ई. 1000 से आधुनिक–काल तक का है जिसमें यह भाषा 17 बोलियों एवं लगभग 100

उपबोलियों में विकसित हुई है। इसका क्षेत्र भी अत्पन्त विस्तृत है और प्रमुख हिन्दी भाषी क्षेत्र हैं–उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश।

1.2.2 हिन्दी की उत्पत्ति–सामान्य परिचय :

'हिन्दी' शब्द का सम्बन्ध 'हिन्द' या 'हिन्दू' से लिया जाता है। 'हिन्द' या 'हिन्दू' शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकार से मानी जाती है –

1. परम्परावादी संस्कृत पण्डितों का मानना है कि 'हिन्दू' शब्द की व्युत्पत्ति हिन+दु से हुई है। 'हिन' का अर्थ नष्ट करना तथा 'दु' का अर्थ 'दुष्ट' है। अर्थात् हिन्दू का अर्थ दुष्टों का विनाश करने वाला है।
2. शब्द कल्पद्रम के पांचवें खण्ड में 'हीन+दुष्+डु' के आधार पर हिन्दू शब्द को स्पष्ट किया गया है जिसका अर्थ है हीनों या ओछों को दूषित करने वाला।
3. 'हिन्दू' शब्द का तीसरा अर्थ हीन+दु अर्थात् हीनों अथवा मलेच्छों का दलन करने वाला या दण्डित करने वाला।
4. हिन्दू शब्द मूलतः फारसी न होकर संस्कृत शब्द 'सिन्धु' का फारसी रूपान्तरण है। इसका सम्बन्ध 'स्यन्द' धातु से माना जाता है जिसका अर्थ द्रवित होना है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी के मतानुसार प्राचीन इरानी साहित्य में भी 'हिन्दू' शब्द 'सिन्धू' नदी के तथा सिन्धू नदी के पास के प्रदेश दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। डॉ. उदयनारायण तिवारी भी मानते हैं कि ईरान अथवा फारस के निवासी 'सिन्धू' नदी के तट के प्रदेश को हिन्द तथा वहाँ के रहने वालों को हिन्दू कहते थे।

भारत देश के नाम के अर्थ में प्रयुक्त 'हिन्द' शब्द में ईरानी भाषा का विशेषण प्रत्यय ईक् जोड़कर हिन्द+ईक् = 'हिन्दीक' शब्द बना है। कालान्तर में अंतिम व्यंजन 'क्' का लोप हो गया तथा 'हिन्दी' शब्द 'हिन्द' के विशेषण रूप में प्रचलित हुआ। इस प्रकार हिन्दी शब्द मूल रूप 'हिन्द' से बना है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने ग्रीक के 'इंदिके', इंदिका, लेटिन के 'इंदिया' आदि शब्दों की व्युत्पत्ति भी 'हिन्दीक' शब्द से मानी है।

1.2.3 भाषा के अर्थ में 'हिन्दी' का प्रयोग :

भाषा के संदर्भ में हिन्दी शब्द पर विचार करने से पूर्व यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि 'हिन्दी' शब्द संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश में कहीं नहीं मिलता। मुसलमानों के आगमन के पूर्व हमारी भाषा को सामान्यतः भाषा ही कहा जाता था।

आज का हिन्दी का रूप खड़ी बोली तक सीमित माना जाने लगा है जबकि इस भाषा का अपना विस्तृत क्षेत्र रहा है– इसमें ब्रज भाषा, अवधी तथा राजस्थानी भाषाओं में उपलब्ध साहित्य सम्मिलित रहा है। अतः हिन्दी केवल एक भाषा तक सीमित नहीं – इसका जातीय विस्तार है। यह पूरे भारत के मानचित्र पर राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन है। हिन्दी को सारे देश में व्यावहारिक भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है। इसीलिये इसे हम भारत को एक सूत्र में आबद्ध करने वाली भाषा के रूप में स्वीकार करते हैं।

1.2.3.1 संस्कृत भाषा के रूप :

विद्वानों का कथन है कि हिन्दी जिस भाषा धारा के विशिष्ट देशिक और कालिक रूप का नाम है, भारत में उसका प्राचीनतम रूप संस्कृत है। संस्कृत का समय 1500 ई. से 500 ई.पू. तक

माना जाता है क्योंकि इस काल में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। इस बोलचाल की भाषा का शिष्ट और मानक रूप संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत भाषा के भी दो रूप हैं :–

1. वैदिक संस्कृत – जिसमें वैदिक साहित्य की रचना हुई है।

2. लौकिक संस्कृत – जिसमें बाल्मीकि, व्यास, भास, अश्वघोष, कालिदास, माघ आदि की रचनाएं हैं।

1.2.3.1.1 वैदिक संस्कृत – वैदिक संस्कृत में रचित साहित्य निम्न प्रकार का है –

वेद (संहिताएं) – ऋक्, साम, यजु और अथर्व।

ब्राह्मण ग्रन्थ – ऐतरेय, शतपथ, तांडय आदि।

आरण्यक – ऐतरेय, बृद्ध आदि।

उपनिषद् – ईश, केन, कठ, प्रश्न आदि।

वेद शब्द 'विद्' धातु से बना है जिसका अर्थ ज्ञान है। चारों वेदों में कुल मिलाकर वैदिक धर्म के स्वरूप का परिचय है, दर्शन का विवरण है और युग के जीवन का वर्णन है। ऋग्वेद में विभिन्न वैदिक देवताओं की स्तुतियां हैं। सामवेद में वैदिक मंत्रों का गान है। यजुर्वेद यज्ञ का विधान स्पष्ट करता है और अथर्ववेद जन–जीवन के अन्य पक्षों को उद्घाटित करता है।

वेदों के उपरान्त ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना की गयी है। हर वेद के अपने–अपने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। ये वेदों के व्याख्या ग्रन्थ हैं जिनमें कथाओं और आख्यान–उपाख्यानों के माध्यम से वैदिक मंत्रों की व्याख्या की गयी हैं।

आख्यक शब्द 'अख्य' से निष्पन्न होता है। विद्वान् इन्हें वानप्रस्थ आश्रम के ग्रन्थ मानते हैं। इनमें यज्ञ की आध्यात्मिक व्याख्या है।

उपनिषद् वैदिक साहित्य के अंतिम सोपान कहलाते हैं। आख्यकों में जो आध्यात्मिक चिन्तन उभरा, वह उपनिषदों में परिपक्व हुआ। उपनिषद वेदों के दार्शानिक पक्ष को उद्घाटित करते हैं। इसीलिये इन्हें वेदों का सार भी कहा जाता है। इन ग्रन्थों में जीव, ब्रह्म, आत्मा, सृष्टि आदि पर आध्यात्मिक विचार प्रस्तुत हैं।

1.2.3.1.2 लौकिक संस्कृत – वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य में दो प्रकार से अन्तर हैं। पहले दोनों में धर्म के स्वरूप में अन्तर है। वैदिक धर्म यज्ञ प्रधान था जबकि लौकिक संस्कृत में भक्ति धर्म का स्वरूप प्रस्कुटित होता है। इसमें राम, कृष्ण दोनों अवतार प्रमुख देवता माने जाते हैं। दूसरा वैदिक संस्कृत की भाषा और लौकिक संस्कृत को भाषा में भी निश्चित रूप से अन्तर है। लौकिक संस्कृत का काल ई.पू. 500 से है। लौकिक संस्कृत के अधिकांश साहित्य का इतिहास ई.पू. 500 से 1500 ई. तक रचा गया। इसमें बाल्मीकि, व्यास, भास, अश्वघोष, कालिदास, माघ आदि की रचनाएं हैं।

इस काल के अन्त तक मानक या परिनिष्ठित भाषा तो एक ही थी किन्तु इसकी तीन क्षेत्रीय बोलियां विकसित हो चली थीं जिन्हे पश्चिमोत्तरी, मध्यदेशी तथा पूर्वी नाम से पुकारा जाता था।

1.2.3.2हिन्दी की उत्पत्ति के विविध सोपान :

संस्कृतकालीन बोलचाल की भाषा विकसित होते होते 500 ई.पू. के बाद इसमें काफी परिवर्तन आया और इस परिवर्तित भाषा को पालि की संज्ञा दी गयी। इसका काल 500 ई. पू. से पहली ईसवी तक है। बौद्ध ग्रन्थों के अन्तर्गत पालि भाषा का जो रूप मिलता है, वह इस बोलचाल की

भाषा का ही शिष्ट और मानक रूप था। इस काल तक क्षेत्रीय बोलियों की संख्या चार तक पहुँच गयी –

पश्चिमोत्तरी, मध्यदेशी, पूर्वी और दक्षिणी। पहली ईसवी तक आते आते यह बोलचाल को भाषा और परिवर्तित हुई तथा पहली ई. से 500 तक इसका रूप प्राकृत से अभिहित किया गया। इस काल में कई क्षेत्रीय बोलियां विकसित हुईं, जिनमें मुख्य रूप से – शौरसेनी, पैशाची, व्राचड़, महाराष्ट्री, मागधी और अर्थ मागधी थी।

प्राकृतों से ही विभिन्न क्षेत्रीय अपभ्रंशों का विकास हुआ है। अपभ्रंश का काल मोटे रूप से 500 ई. से 1000 ई. तक का है। आज के प्राप्त अपभ्रंश साहित्य में मुख्यतः भाषा के दो रूप–पश्चिमी और पूर्वी ही मिलते हैं। प्राकृत के मुख्यतः पांच क्षेत्रीय रूपों तथा आज की दस आर्य भाषाओं के बीच की अपभ्रंश रूप में प्राप्त कड़ी के क्षेत्रीय रूपों की संख्या छह और दस के बीच में ही होगी। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अपभ्रंश के सभी क्षेत्रीय रूपों का अपभ्रंश साहित्य में प्रयोग नहीं हुआ। यदि विभिन्न प्राकृतों से विकसित अपभ्रंशों को किसी अन्य नाम के अभाव में प्राकृत नाम से अभिहित करें तो आधुनिक आर्यभाषाओं का जन्म अपभ्रंश के विभिन्न क्षेत्रीय रूपों से माना जाता है –

अपभ्रंश	**–**	**आधुनिक भाषाएं तथा उपभाषाएं**
शौर सेनी	–	पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, पहाड़ी, गुजराती।
पैशाची	–	लंहदा, पंजाबी
व्राचड़	–	सिंधी
महाराष्ट्री	–	मराठी
मागधी	–	बिहारी, बंगला, उड़िया, असमिया
अर्ध मागधी	–	पूर्वी हिन्दी

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा की उत्पत्ति अपभ्रंश के शौर सेनी, अर्ध मागधी, और मागधी रूपों में हुई है।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि हिन्दी भाषा 1000 ई. के लगभग जन्म लेकर विकसित होते होते अब लगभग 1000 वर्षों से भी अधिक की हो गयी है। इन 1000 वर्षों के इतिहास अथवा विकास को तीन रूपों में देखा जा सकता है।

1.2.3.2.1 आदि काल (1000 ई. से 1500 ई. तक)

1.2.3.2.2 मध्यकाल (1500 ई. सं 1800 ई. तक)

1.2.3.2.3 आधुनिककाल (1800 ई. से अब तक)

1.2.3.2.1 आदिकाल :– हिन्दी भाषा अपने आदिकाल में सभी बातों में अपभ्रंश से बहुत अधिक निकट थी क्योंकि इसी से हिन्दी का उद्भव हुआ।

ध्वनिया – आदिकालीन हिन्दी में वही ध्वनियां प्रयुक्त होती थीं जो अपभ्रंश में प्रयुक्त होती थीं। अपभ्रंश में आठ स्वर थे – अ–आ, इ–ई, उ–ऊ, ए–ओ। ये आठों ही मूल स्वर थे। आदिकालीन हिन्दी में दो नये स्वर – ऐ–औ विकसित हो गये। इसी प्रकार च, छ, ज, झ संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में स्पर्श व्यंजन थे जो आदिकालीन हिन्दी में स्पर्श–संघर्षी हो गये।

व्याकरण – आदिकालीन हिन्दी का व्याकरण 1000 या 1100 ई. के आसपास तक अपभ्रंश के

बहुत निकट था। किन्तु धीरे–धीरे अपभ्रंश के व्याकरणिक रूप कम होते गये और हिन्दी के अपने रूप विकसित हो गये। 1500 ई. तक आते आते हिन्दी अपने पैरों पर खड़ी हो गयी और अपभ्रंश के रूप प्रायः प्रयोग से निकल गये।

शब्द भंडार – आदिकालीन हिन्दी का शब्द भंडार अपभ्रंश का ही था। किन्तु भक्ति आन्दोलन के प्रारम्भ होने के बाद आदिकालीन हिन्दी में तत्सम शब्दावली बढ़ने लगी। मुसलमानों के आगमन से पश्तो, अरबी, फारसी, तुर्की शब्द हिन्दी में आ गये। इस काल में साहित्य में प्रमुखतः डिंगल, मैथिली, दक्खिनी, अवधी, ब्रज तथा मिश्रित भाषा का प्रयोग मिलता है।

1.2.3.2.2 मध्यकाल – इस काल में आकर ध्वनि, व्याकरण तथा शब्द भंडार के क्षेत्र में निम्नलिखित परिवर्तन आये। ध्वनि के क्षेत्र में शब्दांत का 'अ' मूल व्यंजन के बाद आने पर लुप्त हो गया। 'ह' के पहले का 'अ' कुछ स्थितियों में 'ए' उच्चरित होने लगा।

व्याकरण के क्षेत्र में हिन्दी भाषा में से अपभ्रंश के रूप निकल गये। यह आदिकालीन भाषा की तुलना में अधिक वियोगात्मक हो गयी। भाषा के संयोगात्मक रूप कम हो गये।

उच्च वर्ग में फारसी का अधिक प्रचार होने के कारण हिन्दी वाक्य रचना फारसी वाक्य रचना से प्रभावित होने लगी।

शब्द भंडार की दृष्टि से इस काल में फारसी के लगभग 3500 शब्द, अरबी के 2500 शब्द, पश्तो के 50 शब्द (लगभग) तुर्की के 125 (लगभग) शब्द हिन्दी में आ गये।

इस काल में धर्म की प्रधानता होने के कारण राम–स्थान की भाषा अवधी, कृष्ण–स्थान की भाषा ब्रज में विशेष रूप में साहित्य रचना हुई।

1.2.3.2.3 आधुनिक काल :– आधुनिक कालीन हिन्दी में ध्वनिक्षेत्र में अनेक परिवर्तन आये। शिक्षा के व्यवस्थित प्रचार के कारण हिन्दी–प्रदेश के क्षेत्रों में कचहरियों की भाषा उर्दू होने के कारण क़, ख़, ग़, ज़, फ़ 1947 तक सुशिक्षित लोगों में खूब प्रचलित हो गये। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के कारण कुछ बहुशिक्षित लोगों में ऑ (कॉलिज, डॉक्टर, कॉफी) ध्वनि भी प्रयुक्त होने लग गयी।

व्याकरण की दृष्टि से हिन्दी इस काल तक आते आते पूर्णतः वियोगात्मक हो गयी। प्रेस, रेडियो, शिक्षा तथा व्याकरणिक विश्लेषण के कारण हिन्दी व्याकरण का रूप स्थिर हो गया।

शब्द भण्डार की दृष्टि से अंग्रेजी के अधिकाधिक शब्द हिन्दी में आ गये। अनेक पुराने शब्द नये अर्थों में प्रचलित हुए जैसे 'सदन' शब्द राज्य सभा या लोक सभा के लिये प्रयुक्त होने लगा। साहित्य में नाटक, उपन्यास, कहानी, कविता की भाषा बोलचाल के बहुत निकट हो गयी। उसमें अरबी, फारसी, अंग्रेजी के बहु प्रचलित शब्दों का प्रयोग होने लगा। आलोचना की भाषा में तत्सम शब्दावली का बहुत प्रयोग होने लगा। पारिभाषिक शब्दावली के दृष्टि से हिन्दी में विज्ञान, वाणिज्य, अर्थशास्त्र आदि की शब्दावलियां निर्मित हुई। अनेक शब्द अंग्रेजी और संस्कृत से लिये गये। अनेक नये शब्द बनाये गये। परिणाम स्वरूप हिन्दी अपनी अभिव्यंजना में अधिक सटीक, निश्चित, गहरी तथा समर्थ होती जा रही है।

1.2.4 हिन्दी की मूल आर्य भाषाएं :

हिन्दी को मूल आर्य भाषाओं से अभिप्राय है कि वे भाषाएं जिनका प्रभाव हिन्दी पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य पड़ा हो। हिन्दी का उद्भूत स्थान अपभ्रंश का शौर सेनी, अर्ध मागधी

और मागधी रूप माना जाता है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास काल 10वीं शताब्दी से माना जाता है तथापि अपभ्रंश काल के मध्य भाग से हिन्दी के आरम्भिक स्वरूप के दर्शन होने लग जाते हैं। यह सत्य है कि उस समय हिन्दी में बहुत कम साहित्य लिखा गया, उस पर अपभ्रंश का प्रभाव मानते हुए उसे प्राचीन हिन्दी अथवा अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी कहा जाता है। हिन्दी की मूल आकार भाषाएं निम्नलिखित मानी जा सकती हैं –

1.2.4.1 पंजाबी :– पंजाब प्रदेश की भाषा पंजाबी है। मूल रूप में यह अमृतसर के आसपास की भाषा थी किन्तु वर्तमान काल में इसका क्षेत्र अम्बाला से लाहौर तक और जम्मू से भटिंडा तक फैला हुआ माना जाता है। इसकी उत्पत्ति पैशाची प्राकृत से हुई है। इस पर शौरसेनी अपभ्रंश का प्रभाव भी माना जाता है। पहले यह लंडा लिपि में लिखी जाती थी, किन्तु सिखों के गुरु अंगद देव ने लंडा लिपि का बहिष्कार कर, उसे देवनागरी लिपि की विशेषताओं से युक्त कर गुरुमुखी लिपि के रूप में विकसित किया। इसकी प्रमुख बोलियां डोगरी, मालवाई, पोवाधी और माझी आदि हैं।

1.2.4.2 लंहदा :– भारत विभाजन के पश्चात् लंहदा प्रदेश पाकिस्तान में चला गया है। यह पश्चिमी पंजाब में बोली जाने वाली भाषा है। यह लंडा तथा फारसी दोनों ही लिपियों में लिखी जाती है। इसे स्वतन्त्र भाषा न मानकर पंजाबी की उपभाषा भी माना जाता है। इसको हिन्दवी, मुलतानी भी कहा जाता है। फरीद, वारिसशाह, नानक, कादरयार इसके प्रमुख कवि हैं। इसमें उपलब्ध लोक साहित्य विशेष रूप से (मुलतानी) उल्लेखनीय है।

1.2.4.3 सिंधी :– इसका विकास सिंध प्रदेश के व्राचड़ अपभ्रंश से माना जाता है। यह सिंध प्रदेश की भाषा है। मध्यभाग में बोली जाने के कारण इसे बिचोली भी कहा जाता है। सिंधी साहित्य बिचोली में ही लिखा गया है। इसमें साहित्य के गद्य और पद्य दोनों ही रूप मिलते हैं। इस पर फारसी लिपि का प्रभाव है। इसको लंडा लिपि में लिखा जाता है, पर कभी–कभी गुरुमुखी लिपि में भी लिखा जाता है। सिंधी भाषा में अरबी, फारसी और संस्कृत शब्दों का आधिक्य है। भारत के संविधान में स्वीकृत 15 भाषाओं में इसका नाम भी सम्मिलित है। विपुल साहित्य लेखन की दृष्टि से 18वीं शताब्दी को सिंधी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है।

1.2.4.4 गुजराती :– यह गुजरात प्रदेश और बंबई नगर के आसपास की भाषा है। आरम्भ में गुज्जर जाति राजस्थान और गुजरात में बस गयी थी। राजस्थानी और गुजराती में पाये जाने वाले साम्य का कारण भी यही गुज्जर जाति है। पश्चिमी हिन्दी की ब्रजभाषा से भी गुजराती का बहुत साम्य है। इसकी प्रमुख बोली काठियावाड़ी है। इसकी लिपि कैथी है। इसके शब्दों को बांधने हेतु शिरो रेखा नहीं लगती। 17वीं शताब्दी तक यह देवनागरी लिपि में ही लिखी जाती थी। इसके प्रमुख साहित्यकार गोवर्धन त्रिपाठी, डॉ. ध्रुव, माना लाल, रमण लाल देसाई, काका कालेलकर आदि हैं।

1.2.4.5 राजस्थानी :– राजस्थान के बाहर यह सिंध के कोने तक और मध्यप्रदेश के मालवा तक बोली जाती है। इसे हिन्दी की उपभाषा अथवा राजस्थानी हिन्दी के नाम से भी अभिहित किया जाता है। प्राचीन राजस्थानी को डिंगल भी कहा जाता है। इसकी प्रमुख बोलियां मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी, मेवाड़ी आदि हैं। इसके प्रमुख साहित्यकार चंदवरदाई, दुरसाजी, बांकीदास, सूर्यमल्ल आदि हैं। मीरा, दादू, हरिदास प्रमुख राजस्थानी संत कवि माने जाते हैं।

इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश के नागर रूप से माना जाता है।

1.2.4.6 पश्चिमी हिन्दी :– इसे राष्ट्र भाषा या भातृभाषा हिन्दी भी कहा जाता है। उत्तर प्रदेश, बिहार, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश में व्यवहृत होने वाली हिन्दी भाषा ही पश्चिमी हिन्दी है। इसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से मानी जाती है। इसकी प्रमुख बोलियां बांगरू, ब्रजभाषा, खड़ी बोली, कन्नौजी आदि हैं। यह देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। हिन्दी में साहित्य रचना लगभग 1000 वर्ष पूर्व हो गयी थी। इसका साहित्य विश्व के समृद्ध साहित्य की श्रेणी में आता है। सूर, कबीर, बिहारी, घनानंद, भारतेन्दु, हरिऔध, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचंद, प्रसाद, पंत, महादेवी, निराला, दिनकर, जैनेन्द्र, अज्ञेय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा तथा नगेन्द्र इसके प्रमुख साहित्यकार हैं।

1.2.4.7 पूर्वी हिन्दी :– यह हिन्दी पश्चिमी हिन्दी प्रदेश के पूर्व में बोली जाती है। पूर्व में इसकी सीमा बिहार को छूती है। इसी कारण इस पर बिहारी और पश्चिमी हिन्दी का प्रभाव है। यह उत्तर कौशल से दक्षिण कौशल के मध्य बोली जाती है। इसे कासली भी कहा जाता है। इसकी प्रमुख बोलियां छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी और अवधी हैं। इसकी उत्पत्ति अर्ध मागधी अपभ्रंश से मानी जाती है। अवर्धी में विपुल मात्रा में साहित्य प्राप्त होता है। इसके प्रमुख कवि तुलसी, जायसी, मंझन, उसमान, जान, नूर मुहम्मद, मानदास, बाबा चरणदास आदि हैं। इसकी प्रमुख साहित्यिक कृतियां–राम चरित मानस, पद्भावत, मधु मालती आदि हैं। अवधी को देवनागरी लिपि में लिखा जाता है।

1.2.4.8 बिहारी :– यह बिहार में पूर्वी हिन्दी प्रदेश से बंगला प्रदेश के मध्य तक बोली जाती है। बिहार के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के गाजीपुर, बलिया, वाराणसी, मिर्जापुर, आजमगढ़, बस्ती, गोरखपुर जिलों में भी बोली जाती है। इसकी उत्पत्ति मागधी उपभ्रंश से मानी जाती है। इसकी प्रमुख बोलियां मगधी और मैथिली हैं। इसमें साहित्यिक दृष्टि से मैथिली अधिक समृद्ध है। मैथिली देवनागरी में ही लिखी जाती है।

1.2.4.9 उड़िया :– यह उड़ीसा प्रदेश की भाषा है। इसका प्राचीन नाम कालिंग और उत्कल था। उड़िया लिपि का विकास देवनागरी से हुआ है। इसकी प्रमुख बोली भत्री है। इसमें तेलगु और मराठी शब्दों का प्राचुर्य है। उड़िया में 11–12वीं शती के कुछ शिला लेख भी मिलते हैं। इसमें कृष्ण भक्ति साहित्य विपुल मात्रा में मिलता है।

1.2.4.10 बंगला :– यह भारत की समृद्ध भाषाओं में एक है। इसकी दो शाखाएं – पूर्वी बंगला – इसका केन्द्र ढाका है, जो आजकल बंगलादेश में हैं।

–पश्चिमी बंगला– इसका केन्द्र कोलकाता में हैं। इसकी उत्पत्ति मागधी अपभ्रंश से मानी जाती है। इसमें संस्कृत के साथ–साथ फारसी, अंग्रेजी के शब्द भी मिलते हैं। इसकी अपनी लिपि है जो देवनागरी से बहुत प्रभावित है। साहित्यिक दृष्टि से यह भाषा बहुत समृद्ध है। बंगला के आधुनिक साहित्यकारों में – रवीन्द्रनाथ टैगोर, बंकिमचन्द्र चटर्जी, ईश्वरचन्द्र, विद्यासागर, राजा राम मोहन राय, शरत्चन्द्र, ताराशंकर, विमलमित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

1.2.4.11 असमी :– यह बंगला से मिलती–जुलती दक्षिण असाम की भाषा है। इसका विकास मागधी अपभ्रंश से माना जाता है। इसकी लिपि बंगला के समान है। इसमें इतिहास और विज्ञान सम्बन्धी साहित्य प्रचुर मात्रा में है। इसमें कृष्ण भक्ति साहित्य भी रचा गया है। इसके पुराने

कवियों में हेम, माधव, कंदली, शंकर देव और आधुनिक साहित्यकारों में लक्ष्मी नाथ बरूआ, देवकांत, नीलमाणी, रजनीकांत, ज्योति प्रसाद आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

1.2.4.12 मराठी :– महाराष्ट्र प्रदेश में प्रयुक्त भाषा को मराठी कहा जाता है। इसका विकास महाराष्ट्री अपभ्रंश से हुआ है। इसे द्रविड़ प्रदेश की भाषाओं की निकटतम भाषा भी कहा जाता है। इसकी अपनी लिपि मौड़ी है। इसे देवनागरी लिपि में भी लिखा जाता है। इसकी प्रमुख बोलियां कोंकणी, हलवी, खड़ी बोली मराठी आदि है। इसमें प्रचुर मात्रा में साहित्य रचना हुई है। मराठी के आरम्भिक नमूने 10वीं शताब्दी से ही प्राप्त होने लग गये थे। मराठी के प्राचीन साहित्यकारों में नामदेव, ज्ञान देव, तुकाराम, रामदास, महीपति श्रीधर, मोरोपंत राम जोशी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसमें साहित्य की लगभग सभी विधाओं में (नाटक, उपन्यास, कहानी, कविता, एंकाकी) साहित्य रचना हुई है।

1.2.5 सारांश :

स्पष्ट है कि हिन्दी जो पांच उपभाषाओं अथवा बोली समूहों (पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, पहाड़ी, बिहारी) का सामूहिक नाम है, शौरसेनी, अर्ध मागधी, तथा मागधी अपभ्रंश से 1000 ई. के आसपास उद्भूत हुई है। साहित्य के इतिहासों में कुछ लोगों ने हिन्दी का प्रारम्भ और भी बाद में माना है, किन्तु वास्तविकता यह है कि साहित्य में प्रयोग के आधार पर वे निष्कर्ष आधारित हैं और साहित्य में भाषा का प्रयोग जन्म के साथ ही नहीं हो जाता। जब किसी भाषा के जन्मने के बाद कुछ प्रौढ़ता आ जाती है तथा वह बहुस्वीकृत हो जाती है तभी साहित्यकार उसे अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है। इस प्रकार यदि 1550 ई. के आसपास से भी हिन्दी साहित्य मिले तो उस भाषा का आरम्भ 1000 ई. के आसपास ही मानना पड़ेगा। हिन्दी भाषा की मूल उत्पत्ति संस्कृत भाषा के वैदिक तथा लौकिक रूपों से हुई है। इसके विकास को हम आदिकालीन हिन्दी, मध्यकालीन हिन्दी तथा आधुनिककालीन हिन्दी के रूप में समझ सकते हैं। इन तीनों कालों में हिन्दी की ध्वनि व्यवस्था, व्याकरण व्यवस्था, शब्द भण्डार, तथा उसका साहित्यिक प्रयोग सभी पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी की मूल आकर भाषाएं जैसा पंजाबी, लंहदा, सिंधी, गुजराती, राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी, उड़िया, बंगला, असमी तथा मराठी आदि पर संक्षिप्त रूप से विवेचन किया गया है।

1.2.6 अभ्यास प्रश्नावली :

1. हिन्दी शब्द से क्या अभिप्राय है ?
2. भारत की प्राचीनतम भाषा आप किसे मानते हैं ?
3. 'पालि' भाषा का सम्बन्ध किससे माना जाता है ?
4. प्राकृत भाषा में कौन सा साहित्य लिखा गया है ?
5. हिन्दी की उत्पत्ति किस भाषा से मानी जाती है ?

(इन प्रश्नों के लघुउत्तर 5–6 पंक्तियों में दीजिए)

1.2.7 शब्दावली :

पाठ में आये कठिन शब्दों के अर्थ –

व्युत्पत्ति	–	उत्पत्ति
दलन	–	दबे जाने की प्रक्रिया

रूपान्तरण	–	रूप परिवर्तन/अन्तरण
देशिक	–	स्थान/देश से जुड़ा हुआ
कालिक	–	समय/काल से जुड़ा हुआ
आबद्ध	–	प्रतिबद्ध/जुड़ा हुआ
अभिहित	–	सुशोभित
आकर	–	खान/मूल उत्पत्ति स्थान

पाठ संख्या : 1.3 **लेखिका : डॉ. रजिन्दर कौर अनेजा**

हिन्दी भाषा के विविध रूप, शब्द भण्डार

रूपरेखा :

1.3.0 उद्देश्य
1.3.1 भूमिका
1.3.2 हिन्दी भाषा के विभिन्न रूपों के आधार
1.3.2.1 ऐतिहासिक आधार
1.3.2.2 भौगोलिक आधार
1.3.2.3 प्रायोगिक आधार
1.3.2.4 निर्माण रूप आधार
1.3.3 हिन्दी भाषा के विभिन्न रूप
1.3.3.1 मूल भाषा
1.3.3.2 व्यक्ति बोली
1.3.3.3 उपबोली
1.3.3.4 बोलचाल की भाषा
1.3.3.5 रचनात्मक भाषा
1.3.3.6 राष्ट्र भाषा
1.3.3.7 राज भाषा
1.3.3.8 सम्पर्क भाषा
1.3.3.9 संचार भाषा
1.3.4 शब्द भण्डार से अभिप्राय
1.3.4.1 तत्सम शब्द
1.3.4.2 अर्ध तत्सम शब्द (तद्भव शब्द)
1.3.4.3 देशज शब्द
1.3.4.4 आगत शब्दावली
1.3.5 सारांश
1.3.6 अभ्यास प्रश्नावली
1.3.7 शब्दावली

1.3.0 उद्देश्य :–

भाषा के विविध रूपों की कल्पना विभिन्न परिस्थितियों तथा अवस्थाओं में मनुष्य के धारण किये हुए रूपों से की जा सकती है। खेतों में काम करते समय उसे कृषक कहते हैं, सामान ढ़ोते समय मज़दूर कहते हैं। पढ़ाते समय अध्यापक कहते हैं, नाव चलाते समय मल्लाह और पालकी

ढोते समय कहार कहते हैं। यही स्थिति भाषा की है। आन्तरिक गठन में एक होकर भी परिस्थिति अथवा प्रयोजनवश भाषा विविध रूप धारण कर लेती है। कभी वह 'बोली' होती है, कभी 'उपभाषा' कभी 'बानी' कहलाती है तो कभी 'आदर्श भाषा'। कभी उसे 'साहित्यिक भाषा' कहते हैं तो कभी 'बोलचाल की भाषा' जैसे नामों से अभिहित की जाती है।

1.3.1 भूमिका :–

भाषा के विविध रूप मनुष्य की लेखन शैली द्वारा परिलक्षित होते हैं। ये रूप ने केवल बोलचाल में भिन्न होते हैं ब्लकि वाक्यों, शब्दों के प्रयोग तक में भिन्न होते हैं। कालिदास द्वारा प्रयुक्त संस्कृत बाल्मीकि से भिन्न है। प्रसाद की हिन्दी, प्रेमचन्द की हिन्दी से भिन्न है। अंग्रेज़ी में मिल्टन और शेक्सपीयर के भाषा प्रयोग परस्पर भिन्न हैं। ये भाषा रूप व्यक्तित्व की भिन्नता के कारण उत्पन्न होते हैं और भाषा के उध्यपन में महत्त्व पाने लगते हैं। इस पाठ में भाषा के विभिन्न रूपों में बोलचाल की भाषा, रचनात्मक भाषा, राष्ट्र भाषा, राजभाषा, सम्पर्क भाषा और संचार भाषा पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

1.3.2 हिन्दी भाषा के विभिन्न रूपों के आधार :–

सामान्य भाषा के अन्तर्गत भाषा के अनेक रूप आते हैं। भाषा के इन रूपों के निम्नलिखित आधार हैं –

इतिहास, भूगोल, प्रयोग और निर्माता।

1.3.2.1 ऐतिहासिक आधार – एक ही भाषा के इतिहास के एक समय में जो रूप था उसे संस्कृत कहा जाता है, दूसरे समय में जो रूप था उसे पालि कहा जाता है। इसी प्रकार प्राकृत और अपभ्रंश भी भाषा के ऐतिहासिक रूप के अन्तर्गत आते हैं।

1.3.2.2 भौगोलिक आधार – अपभ्रंश के बाद जो भाषा का संस्कृत, पालि, प्राकृत की परम्परा में जो रूप आया उसे आधुनिक भारतीय आर्य भाषा कह सकते हैं और इसी का भौगोलिक रूप पंजाबी, हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा बंगाली आदि हैं।

1.3.2.3 प्रायोगिक आधार – इसके अन्तर्गत देखा जाता है कि भाषा का प्रयोग कौन करता है, किस विषय के लिये प्रयोग होता है। यह प्रयोग साधु है या असाधु। इसके आधार पर ही जातीय भाषा, व्यावसायिक भाषा, राज भाषा, राष्ट्र भाषा, साहित्यिक भाषा, गुप्त भाषा, राजनयिक भाषा, परिनिष्ठित भाषा, अपभाषा, टकसाली भाषा, विकसित–अविकसित भाषा, शुद्ध–अशुद्ध भाषा, मृत–जीवित भाषा, प्रचलित एवं अल्पप्रचलित भाषा जैसे प्रयोग होते हैं।

1.3.2.4 निर्माण रूप आधार – यदि किसी भाषा का निर्माता समाज है, वह परम्परागत रूप से चली आ रही है तो उसे भाषा कहते हैं और यदि एक–दो व्यक्तियों ने उसका निर्माण किया है तो उसे कृत्रिम भाषा कहते हैं।

1.3.3 हिन्दी भाषा के विभिन्न रूप :–

भाषा के विभिन्न रूपों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है –

1.3.3.1 मूल भाषा – भाषा का यह रूप ऐतिहासिक है। किसी एक स्थान की भाषा जो आरम्भ में उत्पन्न हुई होगी तथा आगे चलकर जिससे ऐतिहासिक और भौगोलिक आदि कारणों से अनेक भाषाएं, बोलियां तथा उपबोलियां आदि बनी होगी, मूल भाषा कही जायेगी।

1.3.3.2 व्यक्ति बोली – एक व्यक्ति की भाषा को व्यक्ति बोली कहते हैं। यह भाषा का

संकीर्णतम रूप है। इसमें आदि से अंत तक कुछ न कुछ परिवर्तन अथवा विकास होता रहता है।
1.3.3.3 उपबोली – भाषा का यह रूप भूगोल पर आधारित है। इसका प्रयोग एक छोटे से क्षेत्र में होता है। यह बहुत सी व्यक्ति बोलियों का सामूहिक रूप है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार – 'किसी छोटे क्षेत्र की ऐसी व्यक्ति बोलियों का सामूहिक रूप, जिनमें आपस में कोई स्पष्ट अन्तर न हो, स्थानीय बोली या उपबोली कहलाता है। एक बोली के अन्तर्गत कई उपबोलियां होती हैं।'
1.3.3.4 बोलचाल की भाषा – विचारों की अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम भाषा है। भाषा ही मनुष्य को एक–दूसरे के निकट लाती है। सम्प्रेषण के लिये भाषा के दो साधन हैं। एक तो मनुष्य बोलकर अपनी बात दूसरों तक पहुँचा सकता है, दूसरे लिखकर वह अपनी बात दूसरों तक पहुँचा सकता है। इसी को क्रमशः बोलचाल की भाषा और लिखित भाषा कहते हैं। मनुष्य जन्म के कुछ वर्षों के बाद ही अपनी भाषा बोलना आरम्भ कर देता है जबकि लिखित भाषा से उसका परिचय तब होता है जब वह शिक्षा प्राप्त करने के लिये स्कूल जाता है। बोलचाल की भाषा वह अपने परिवेश से स्वतः सीखता है। भाषा बोलने का इतिहास तो मानव जन्म के साथ जुड़ा हुआ है जबकि लिखना उसने बहुत बाद में सीखा। इसी को मौखिक भाषा भी कहते हैं। बोलचाल की भाषा वस्तुतः काल सापेक्ष, गतिशील तथा नश्वर या अस्थायी होती है। यह उस समय उत्पन्न होती है जब वक्ता और श्रोता एक–दूसरे के समक्ष उपस्थित रहकर वार्तालाप कर रहे होते हैं या वक्ता के मन में कोई विशिष्ट श्रोता या श्रोता वर्ग विद्यमान रहता है। रेडियो या दूरदर्शन पर अनेक ऐसे कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं जिनमें वक्ता के समक्ष प्रत्यक्ष रूप से श्रोता उपस्थित नहीं होता। इनके श्रोता बहुत दूर बैठकर इन कार्यक्रमों को देखते एवं सुनते हैं। भाषा संरचना की जटिलता एवं गठन बोलचाल की भाषा में प्रायः नहीं होता। यह अत्यंत सहज, स्वाभाविक एवं तीव्र गति से उत्पन्न होती हैं। इसमें संरचनागत जैसी जटिलता एवं कसाव आना असंभव सा होता है। यही कारण है कि बोलचाल की भाषा में प्रायः शिथिल संरचनाएं देखने को मिलती हैं। बोलचाल की भाषा में सम्प्रेष्य को संदर्भ से समझा जाता है। इसमें परस्पर आदान–प्रदान होने के कारण बोधन के अन्तराल को तुरन्त स्पष्ट कर लिया जाता है। बोलचाल की भाषा में अनेक ऐसी प्रयुक्तियां भी दिखाई देती हैं जिन्हें लेखन में अभिव्यक्त करना असंभव होता है।
1.3.3.5 रचनात्मक भाषा – इसे सृजनात्मक अथवा साहित्य रचना की भाषा भी कहते हैं। साहित्यिक रचनाएं मानक भाषा के आधार पर ही होती हैं। जिस भाषा क्षेत्र में शिक्षा का व्यापक प्रचार–प्रसार होता है उसमें मानक भाषा और साहित्यिक भाषा में अन्तराल कम होता है, किन्तु जहाँ साक्षरता समाज के कुछ वर्गों तक सीमित रहती है वहाँ मानक भाषा और साहित्यिक भाषा में अन्तर अधिक रहता है। यदि साहित्य में प्रयुक्त होने वाली भाषा समय की गति के अनुसार परिवर्तित नहीं होती तो उसका जीवन्त कथ्य रूपों से सम्बन्ध बिल्कुल टूट जाता है। वह मृत भाषा हो जाती है। यह स्थिति मध्य भारतीय आर्य भाषा काल में संस्कृत साहित्य में देखी जा सकती है।
समकालीन साहित्य की भाषा मानक भाषा के अधिक निकट है। इसका कारण यह है कि साहित्यिक भाषा लिखी जाती है, मानक भाषा बोली जाती है। मानक भाषा में भाषिक व्यवस्थाओं और संरचनाओं की निश्चितता होती है जबकि साहित्य में साहित्यकार इस सामान्य संरचना के

अतिरिक्त व्यवस्थाओं के नये प्रयोग करता है, शब्दों को नवीन अर्थ प्रदान करता है। इसी कारण साहित्यिक भाषा में भाषिक तत्त्वों को ही योजना नहीं होती उसमें शैली के उपादान भी समाहित होते हैं।

1.3.3.6 राष्ट्र भाषा – प्राचीन भारत में कभी संस्कृत, पालि, शौरसेनी, प्राकृत, अपभ्रंश, आदि राष्ट्र–भाषा के स्थान पर सुशोभित रही हैं। मध्यकाल में ब्रजभाषा राष्ट्र भाषा थी आज यही कार्य खड़ी बोली हिन्दी कर रही है। आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय ने अपनी पुस्तक 'राष्ट्र भाषा पर विचार में' राष्ट्र के स्वरूप को विस्तृत रूप से वर्णित किया हैं। उनका कथन 'इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि हमारी सच्ची राष्ट्र भाषा वही हो सकती है जिसकी प्रवृत्ति राष्ट्र की प्रवृत्ति हो और जो राष्ट्र के साथ सती होने के लिये सदा तैयार रहे। जिस भाषा को राष्ट्र की परम्परा से प्रेम नहीं, जिस भाषा को राष्ट्र के गौरव का ध्यान नहीं, जिस भाषा में राष्ट्र की आत्मा नहीं, वह भाषा राष्ट्र की भाषा क्योंकर कही जा सकती है ? किसी भी राष्ट्र भाषा के लिये यह अनिवार्य है कि उसके शब्द–शब्द 'राष्ट्र–राष्ट्र' की पुकार मचाने वाले हो और अराष्ट्रीय भावों को धर–दबाने वाले हों। यदि उसके शब्द में यह राष्ट्र निष्ठा और यह राष्ट्र शक्ति नहीं, तो वह राष्ट्र भाषा तो है ही नहीं और चाहे जो कुछ हो।''

स्पष्ट है कि किसी राष्ट्र में एक छोर से दूसरे छोर तक बोली और समझी जाने वाली भाषा ही राष्ट्र भाषा कहलाती है। यह देश में सर्वाधिक प्रचलित, विचार सम्पर्क की विविध संभावनाओं से पूर्ण, उच्च कोटि के विशाल साहित्य से सम्पन्न, सरल लिपि संयुक्त, राष्ट्र के कण कण में देश की सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना का संचार करने वाली होती है। यह सम्पूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने की, राष्ट्रीयता की भावना से राष्ट्र–हृदय को आन्दोलित करने की, तथा राष्ट्रीय गौरव की महत्ता प्रदर्शित करने की असीम शक्ति धारण किये रहती है। राष्ट्रभाषा सम्पूर्ण देश में संचरण करने वाली राष्ट्र की बहुसंख्यक जनता के द्वारा व्यवहृत अखिल देशीय संपर्क भाषा होती है। यह अपने राष्ट्रीय आदर्शों और सांस्कृतिक मान्यताओं का डंका पीटने का काम करती है राष्ट्र भाषा हिन्दी ही पूरे देश को एक सूत्र में जोड़ने का काम करती है।

1.3.3.7 राज भाषा – राज भाषा का शाब्दिक और सामान्य अर्थ है 'राजकाज की भाषा', जिसमें राजकाज किया जाता है। एक देश की प्रशासनिक व्यवस्था के लिये इसी भाषा का प्रयोग होता है। केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों द्वारा समस्त पत्र–व्यवहार, राज कार्य इसी भाषा में चलाया जाता है। प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने राजभाषा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है कि – राजभाषा का प्रयोग मुख्यतः चार क्षेत्रों में अभिप्रेत है – शासन, विधान, न्याय पालिका और कार्य पालिका। इन चारों क्षेत्रों में जिस भाषा का प्रयोग होता है उसे राज भाषा कहते हैं। राजभाषा किसी देश अथवा राष्ट्र की प्रशासनिक भाषा होती है। इसका राजनीतिक महत्त्व होता है। प्रशासनिक उलट–फेर या परिवर्तन से राजभाषा परिवर्तित हो जाती है। जैसे अंग्रेजों के शासनकाल में अंग्रेजी राजभाषा बन बैठी।

राजभाषा किसी भी राष्ट्र की बुद्धि है और राष्ट्र भाषा उसका हृदय। किसी भी देश की सुख समृद्धि के लिये राजभाषा और राष्ट्रभाषा में एकरूपता होनी अनिवार्य है। हिन्दी के राज भाषा के रूप में कुछ समस्याएं हमारे सामने आयी हैं। जैसे– हिन्दी का रूप क्या है ? हिन्दी में सर्वमान्य शब्दावली का निर्माण किस पद्धति से किया जाये ? देवनागरी लिपि को आधुनिक आवश्यकताओं

के अनुसार कैसे सक्षम बनाया जाये ? हिन्दी का प्रचार करने और अध्ययन–अध्यापन का स्तर उँचा करने के लिये क्या क्या किया जाये ?
इस संदर्भ में डॉ. भोलानाथ तिवारी कहते हैं – किसी भी भाषा के राजभाषा बनने के लिये निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं –

1. सरकारी कर्मचारी के लिये वह भाषा सरल होनी चाहिये।
2. भाषा ऐसी होनी चाहिये जिसके माध्यम से पूरे भारत में धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक विचार–विनिमय हो सके।
3. उस भाषा का भारत के बहुसंख्यक लोग प्रयोग करते हों।
4. वह भाषा राष्ट्र के लिये भी सरल होनी चाहिये।
5. ऐसी भाषा का चुनाव करने में अल्पकालिक या वर्तमान लाभ ही न देखकर उसके प्रति दूरदर्शी होना चाहिये।

राज भाषा के रूप में हिन्दी की कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्न लिखित हैं जो उसे हिन्दी के अन्य रूपों से अलगाती हैं –

1. राज भाषा हिन्दी की अभिधात्मकता उसे साहित्यिक हिन्दी से अलगाती है।
2. साहित्यिक हिन्दी में एकाधिकार्थकता होती है, जबकि राज भाषा हिन्दी में सभी स्तरों पर एकार्थकता ही काम्य होती है।
3. राज भाषा हिन्दी अपने पारिभाषिक शब्दों में भी हिन्दी की अन्य प्रयुक्तियों से अलग है। इसमें काफी सारे शब्द ऐसे हैं जो मूलतः इसी के हैं और यदि अन्य प्रयुक्तियों में भी प्रयुक्त होते हैं, तो इसी से लेकर। जैसे –

   आयुक्त (Commissioner)
   निविदा (Tender)
   मंत्रालय (Ministry)
   प्रशासकीय (Administrative)

राजभाषा, भाषा के उस रूप को कहते हैं जो राज–काज में प्रयुक्त होता है। भारत की आजादी के बाद एक राजभाषा आयोग की स्थापना की गयी। उसी आयोग ने यह निर्णय लिया कि हिन्दी को भारत की राजभाषा बनाया जाये।

1.3.3.8 सम्पर्क भाषा – सम्पर्क भाषा से तात्पर्य है उस भाषा रूप से जो समाज के विभिन्न तबकों के बीच सम्पर्क में काम आती है। हिन्दी इस दृष्टि से बोली बोलने वाले वर्गों के बीच सम्पर्क भाषा है और भारत के अन्य क्षेत्रों में भाषाएँ बोलने वालों के बीच सम्पर्क भाषा है। शासन के विभिन्न अंगों में पूरे देश को जोड़ने के लिये हमने राज भाषा को अपनाया है। इस प्रकार राजभाषा औपचारिक रूप से देश की सम्पर्क भाषा है। राजभाषा के माध्यम से ही देश के विभिन्न विधायी निकाय एक दूसरे से सम्पर्क कर पाते हैं, विभिन्न न्यायालय एक समन्वित इकाई के रूप में काम कर पाते हैं और देश के विभिन्न कार्यालय एक दूसरे से सम्पर्क कर पाते हैं। डॉ. ग्रियर्सन का कथन है कि भाषा और बोली में वही सम्बन्ध है जो पहाड़ तथा पहाड़ी में। जैसे एवरेस्ट पहाड़ है और हालवर्न पहाड़ी। इन दोनों के मध्य विभाजक रेखा को बताना कठिन होता है। सम्पर्क से अभिप्राय सम्बन्ध ही है। एक भाषा के माध्यम से द्वितीय भाषा, अन्य भाषा तथा विदेशी भाषा को समझना ही भाषाओं में परस्पर सम्पर्क स्थापित करता है। भाषाओं का यह

सम्पर्क कई कारणों से होता है। जैसे –

– सामाजिक सम्पर्क
– धार्मिक सम्पर्क
– साहित्यिक सम्पर्क
– राजनीतिक सम्पर्क
– शैक्षिक सम्पर्क।

1.3.3.8.1 सामाजिक सम्पर्क – विवाह, खेल कूद, मेला आदि से विभिन्न भाषिक समुदायों को एक–दूसरे से मिलने तथा अपने भावों को अभिव्यक्त करने का मौका मिलता है। ऐसे अवसरों पर अपनी बोली को छोड़कर उन्हें सम्पर्क भाषा का व्यवहार करना पड़ता है।

1.3.3.8.2 धार्मिक सम्पर्क – धार्मिक कारणों से भी सम्पर्क भाषा का विस्तार होता है। देश के कोने–कोने में स्थापित तीर्थों में प्राचीन काल से आजतक संस्कृत का वर्चस्व दिखाई देता है। संस्कृत के स्थान पर अब सामान्य सम्पर्क का माध्यम हिन्दी हो गयी है। प्राचीन काल में धर्म–भाषा संस्कृत में अनेक दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति की जाती थी। दक्षिण के आचार्यों ने संस्कृत को ही माध्यम भाषा बनाया था। आज संस्कृत का प्रयोग यद्यपि सामान्य जनों के द्वारा नहीं किया जा रहा है फिर भी पूजा–पाठ, यज्ञ–यजन, विवाह आदि कृत्यों में संस्कृत भाषा में ही मंत्र पढ़े जाते हैं।

1.3.3.8.3 साहित्यिक सम्पर्क – बोली को भाषा बनाने में साहित्यिक रचनाओं का विशेष महत्त्व है। जब कोई बोली व्यापक साहित्यिक भाषा बनती है तो वह अपनी क्षेत्रीय सीमाओं को लांघकर अन्य बोलियों के क्षेत्र में प्रवेश कर जाती है। अन्य क्षेत्रों से वह बहुत कुछ प्रभाव भी ग्रहण करती है इससे उसका एक व्यापक भाषित रूप निर्मित हो जाता है।

1.3.3.8.4 राजनीतिक सम्पर्क – किसी बोली या भाषा के प्रयोक्ताओं के राजनीतिक वर्चस्व के साथ भाषा का भी वर्चस्व स्थापित हो जाता है। अंग्रेजों ने सम्पूर्ण विश्व में अपना उपनिवेश स्थापित किया था जिससे अंग्रेजी सम्पूर्ण विश्व में प्रसार पा गयी। अंग्रेजी की जहाँ प्रभुसत्ता नहीं है, वहाँ भी अंग्रेजी की प्रभुसत्ता है जैसे – भारत ! संस्कृत, पालि, हिन्दी आदि भाषाओं के प्रचार–प्रसार में राजनीति का उल्लेखनीय योगदान है।

1.3.3.8.5 शैक्षिक सम्पर्क – शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिये किसी एक मानक भाषा का सहारा लेना पड़ता है। मानक भाषा के प्रचार से बोलियों का अस्तित्व संकटग्रस्त हो जाता है। शिक्षित व्यक्ति अपनी बोली में मानक भाषा का समावेश कर बोलीगत अनेक शब्दों का प्रयोग अमानक समझ कर छोड़ देता है।

1.3.3.9 संचार भाषा – अनेक भाषा–भाषियों, बोली क्षेत्रों में जितना अधिक सम्पर्क होता है, मानक भाषा के प्रचार में उतनी ही सुविधा मिलती है। रेल, मोटर, जहाज आदि यातायात के साधनों से नित्य प्रति लाखों आदमी एक–दूसरे के सहयात्री बनते हैं। वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं जहाँ व्यावसायिक, राजनीतिक तथा अन्य कार्यों के कारण कुछ दिन रूकते है। ऐसी स्थिति में यह अनिवार्य हो जाता है कि वह किसी सम्पर्क भाषा का व्यवहार करें, जिससे ज्यादातर स्थानों को समझा जा सके। हिन्दी में छपने वाले हज़ारों पत्र–पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा आदि के कार्यक्रमों से हिन्दी भाषा का व्यापक प्रचार–प्रसार होने से उसका यह रूप भी विकसित होने लगा है।

1.3.4 शब्द भण्डार से अभिप्राय :–

किसी भाषा में प्रयुक्त शब्द समूह को ही शब्द भण्डार कहा जाता है। इसे ही शब्द संग्रह, शब्द सम्पत्ति, शब्दावली आदि पर्यायों से पुकारा जाता है। हिन्दी शब्द भण्डार के भेद हिन्दी शब्दों के विविध स्त्रोतों का वर्णन करते हुए आचार्य राम देव त्रिपाठी इनके पांच भेद स्वीकारते हैं –

1. संस्कृत – ये तत्सम कहे जाते हैं।
2. संस्कृत भव – इनका बहुप्रचलित नाम तद्भव है।
3. अर्ध–तत्सम – इनको संस्कृताभास कहा जाता है।
4. स्वकीय / देशी अथवा देशज
5. विदेशी / भाषान्तरगत / भाषाज्तरीय / आगत अथवा गृहीत

इन शब्दों का विवेचन प्रस्तुत है –

1.3.4.1 तत्सम शब्द – तत्सम में 'तत' का अर्थ है 'वह' अर्थात् संस्कृत और 'सम' का अर्थ है 'समान'। अर्थात् तत्सम उन शब्दों को कहते हैं जो संस्कृत के समान हो अथवा संस्कृत जैसे हो। उदाहरण के लिये हिन्दी में कृष्ण, गृह, कर्म, धर्म, हस्त आदि शब्द तत्सम हैं। वस्तुतः ये वे शब्द हैं जो संस्कृत से हिन्दी में बिना किसी ध्वनि परिवर्तन के आ गये। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने मूल उस की दृष्टि से तत्सम शब्दों के चार प्रकार बताये हैं :–

(क) प्राकृतों (पालि, प्राकृत, अपभ्रंश) से होते हुए आने वाले शब्द जैसे – अचल, अचला, अघ, दम, कुसुम, काल, जन्तु, दम, दण्ड आदि। –संस्कृत से सीधे हिन्दी में आदि, भक्ति, रीति तथा आधुनिक कालों में लिये गये शब्द जैसे कर्म, विद्या, ज्ञान, कृष्ण, क्षेत्र, पुस्तक, मार्ग, मत्स्य, मद्य, मेघ, पुष्प, कुशल, मृग आदि। ऐसे शब्दों की संख्या प्रथम वर्ग से बड़ी है।

(ख) संस्कृत के व्याकरणिक नियमों के आधार पर हिन्दी में निर्मित तत्सम शब्द। जैसे – जलवायु, वायुयान, जहाज़, सम्पादकीय, प्रवक्ता, रेखाचित्र, प्रभाग, नगर पालिका, समाचार पत्र, पत्राचार आदि।

(ग) अन्य भाषाओं से आये तत्सम शब्द। इस वर्ग के तत्सम शब्दों की संख्या बहुत कम है। कुछ शब्द बंगाली तथा मराठी माध्यम से आये हैं। इनमें से कुछ शब्द इन भाषाओं में संस्कृत के आधार पर बने हैं –
मराठी – वाङ्मय, प्रगति
बंगाली – वक्तृता, उपन्यास, गल्प, संदेश, कविराज, अभिभावक, निर्भर, अभ्यर्थना, उर्मिल, धन्यवाद आदि।

(घ) हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले तत्सम शब्द संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा अव्यय हैं।

(क) संज्ञा तत्सम – संज्ञा शब्द प्राय दो प्रकार के होते हैं –

संस्कृति के प्रतिपादिक – जैसे राम, कृष्ण, पुस्तक, मित्र, फल, कुसुम, पुष्प मनुष्य, बालक, वृक्ष आदि अकारान्त शब्द हैं। इसी प्रकार इकारान्त में मुनि, हरि, कवि, कपि, यति, रवि, पति, रूचि, मति आदि। ईकारान्त में लक्ष्मी, सुधी आदि। उकारान्त में भानु, शत्रु, विष्णु, गुरू, धेनु, पशु, साधु, जन्तु, प्रभु, शिशु, आदि तथा अकारान्त में स्वयंभू, बधू, भू आदि शब्द।

(ख) संस्कृत के प्रथमा एक वचन – जैसे भ्राता, जमाता, सखा, पिता, दाता, माता, नेता,

दुहिता, आत्मा, राजा, ब्रह्मा, युवा, स्वामी, तपस्वी, विद्वान्, भगवान्, धनवान् आदि कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका प्रतिपादिक रूप एवं प्रभमा बहुवचन रूप एक ही होता है, अतः इन्हें उपर्युक्त दो में से किसी में भी रखा जा सकता है। जैसे भार्या, नदी, विधा, बाला, निशा आदि।

सर्वनाम तत्सम – हिन्दी में सर्वनाम केवल दो ही प्रयुक्त हैं जो एकवचन के रूप में हैं – मम, तव आदि।

विशेषण तत्सम – हिन्दी में विशेषण केवल प्रतिपादिक रूप में ही प्रयुक्त होते हैं। जैसे – श्वेत, सुन्दर, चिरन्तन, पुरातन, तीव्र, नूतन आदि।

क्रिया तत्सम :– तत्सम शब्दों के आधार पर कुछ क्रियाएं भी बनी हैं – जैसे–स्वीकारना।

अव्यय तत्सम – हिन्दी में तत्सम अव्यय तीन प्रकार से प्रयुक्त होते हैं –

1. संस्कृत के समान – जैसे धिक्, सहसा, पृथक् आदि।

2. संस्कृत के कई रूपों में एक – ये अव्यय संधि के नियमों के कारण संस्कृत में कई रूपों में आते हैं किन्तु हिन्दी में प्रायः उनका एक ही रूप प्रयुक्त होता है – शनैः शनैरः शनैस्।

3. संस्कृत का मूल रूप – कुछ अव्यय संस्कृत में तो दूसरे रूपों में आते हैं किन्तु हिन्दी में उनके रूप को न लेकर मूल को स्वीकार किया जाता है। जैसे संस्कृत में 'नित्यम्' ही आयेगा जबकि हिन्दी में नित्य ही आयेगा, नित्यम् नहीं।

1.3.4.2 अर्ध तत्सम शब्द :– इसका प्रयोग ग्रियर्सन, चटर्जी आदि आधुनिककालीन भाषा शास्त्रियों ने उन शब्दों के लिये किया है जो एक प्रकार से तत्सम एवं तद्भव के बीच में हैं। अर्ध तत्सम वे शब्द हैं जो प्राकृत अपभ्रंश काल में या आधुनिक भाषा काल में सीधे संस्कृत से लिये गये हैं और जिनमें तद्भव जैसे परिवर्तन नहीं हुए हैं, अपितु कुछ अन्य प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। ये शब्द तद्भवों की तुलना में तत्सम से कुछ ही भिन्न हैं। उदाहरण के लिये 'कृष्ण' तत्सम शब्द हैं तो 'कान्हा', 'कन्हैया' तद्भव हैं तथा 'किशन' अर्ध तत्सम हैं। 'कान्हा' तथा 'किशुन' दोनों ही संस्कृत के कृष्ण से निकले हैं अतः दोनों ही तद्भव कहलाने के अधिकारी हैं, किन्तु 'कान्हा' के तद्भवीकरण की प्रक्रिया बहुत पहले शुरू हो गयी थी, जबकि 'किशुन' के तद्भवीकरण की प्रक्रिया बहुत बाद में शुरू हुई। इसको हम पूर्ववर्ती तद्भव तथा परवर्ती तद्भव भी कह सकते हैं।

तद्भव शब्द – तद्भव शब्द दो शब्दों के योग से बना है – तत्+भव। 'तत्' अर्थात संस्कृत से और 'भव' अर्थात उत्पन्न अथवा विकसित अर्थ से जुड़ा है। इस प्रकार तद्भव का अर्थ हुआ वे शब्द जो संस्कृत शब्दों से उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार संस्कृति भाषा प्रसूत शब्दों को तद्भव कहते हैं। ये शब्द प्राकृत से होकर हिन्दी में आये हैं। जैसे कृष्ण का तद्भव रूप कान्हा एवं कन्हैया है। इसी प्रकार कर्म का काम, धर्म का धाम, दुग्ध का दूध, नृत्य का नाच, द्योटक का घोड़ा, आदि तद्भव शब्द हैं। भरत ने तद्भव को 'विभ्रष्ट' कहा है। वाग्भट्ट न 'तज्ज' तथा हेम चन्द्र ने 'संस्कृत योनि' कहा है। इनको अपभ्रष्ट या अपभ्रंश भी कहा जाता है।

1.3.4.3 देशज शब्द :– कुछ विद्वान् इसे 'देशी मत' देशी प्रसिद्ध, देशजात, देसिका आदि कहते हैं। हेमचन्द्र, मार्कडेय आदि इसे देश्य या देशी कहते हैं। आचार्य चण्ड का कहना है कि जो शब्द संस्कृत एवं प्राकृत न हो उनको देशी प्रसिद्ध शब्द कहा जाता है। हार्नेल ने संकेत दिया है कि ये वे तद्भव शब्द हो सकते हैं जो इतने विकृत हो गये हैं कि उनका तद्भव रूप

पहचाना ही नहीं जा सकता। द्रविड़ प्रान्तों में विकसित प्रान्तीय शब्द एवं प्राथमिक प्राकृतों के तद्भव आदि शब्दों को, जो संस्कृत शब्दों से जोड़े नहीं जा सकते, देशज मानते हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार जो शब्द किसी भाषा–क्षेत्र में बिना किसी आधार (तत्सम, तद्भव, गृहीत, शब्द तथा अनुकरण आदि) के विकसित हो गये हो, देशज शब्द कहलाते हैं। इनकी व्युत्पत्ति का कुछ सही प्रमाण नहीं है। अर्थात् ये अज्ञात व्युत्पत्ति के शब्द हैं। हिन्दी में ऐसे शब्द–कबड्डी, खादी, घूँट, गड़बड़, घपला, चंपत, झंझट, चूहा, टट्टू, टीस, ठेस, झगड़ा, ठेठ, तेदुंआ, थोथा, पेड़, पेठा, धब्बा, भर्ता आदि।

1.3.4.4 आगत शब्दावली :– दूसरी भाषाओं से आने वाले शब्दों को ही आगत शब्दावली कहते हैं। इन्हें विदेशी शब्द भी कहते हैं क्योंकि ये अन्य देशों की भाषाओं से आये हैं।

भारतीय आर्य भाषा में विदेशी शब्दों के लिये जाने की परम्परा बहुत प्राचीन है। भारोपीय भाषा–भाषियों ने बहुत पहले सुमेरी भाषा से 'ग्वाउ' (स. गौ, अ. काउ, फा. गाव आदि) तथा रोध (स. लौह, रुधिर आदि) लिये थे। इसी प्रकार भारत ईरानियों ने यूनानी भाषा से उन शब्दों को लिया जो संस्कृत में शूक, भक्षिका, छाग, कफ, कूप, शलाका, तृण, हिरव्य रूप में मिलते हैं। भारत में आने पर भी समय समय पर अनेक विदेशी शब्द संस्कृत में आते रहे हैं। जैसे यूनानी से द्रम्य, द्रम, द्रम्भ (प्रा. में दम्भ, हिन्दी में – दाम, दमड़ी) आदि।

ईरानी शब्द – कुन्दक (कुन्दुर), निपिस्त (लिखित) मिहिर (मित्र)।

मिस्त्री शब्द :– मुद्रा (मुद्रिका भी इसी से है, हि. में मुंदरी/हिन्दी का मिश्री भी मूलत+ मिस्ती है जो संस्कृत में मिश्र के प्रभाव से मिश्री उच्चरित होता है।

इस प्रकार संस्कृत तथा प्राकृत में अनेक भाषाओं से शब्द आये हैं। हिन्दी ने भी इसी परम्परा में पश्तो, तुर्की, फारसी, पुर्तगाली, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, डच, स्पेनी, रूसी तथा कई भारतीय भाषाओं से शब्द लिये हैं। इनका विवरण नीचे प्रस्तुत है –

पश्तो शब्द :– यह अफगानी भारोपीय परिवार की भाषा है तथा भारत–ईरानी वर्ग में आती है। हिन्दी में पठान, रोहिली शब्द पश्तो के हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी हिन्दी में पश्तो शब्दों की संख्या 100 से ऊपर मानते हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख – अटेरन, डाकर, ढाँढा, अल्लम गल्लम, बकलोल, मटरगश्ती, गुण्डा, अचार, तड़ाक, असमस, जमालघोटा, चपड़कनाती, खचड़ा, अखरोट, चख चख, पटाखा, डंगर, डेरा, गटागट, गुटरगूँ, कुड़कुड़ाना, गड़बड़, लपड़ शपड़, लताड़, लुच्चा, हड़बड़ी, हमजोली, अटकल, भड़ास इत्यादि।

तुर्की शब्द :– तुर्किस्तान, पूवी प्रदेश के साथ भारत का प्राचीन सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध धर्म, व्यापार और राजनीति के स्तर पर था। हिन्दी में कुल तुर्की शब्दों की संख्या लगभग 125 तक है। कुछ प्रमुख शब्द– उर्दू, बहादूर, अजबक, तुर्क, आका, कलगी, चाकू, कैंची, काबू, कुली, कोर्मा, खां, खातून, खानुम, गलीचा, चकमक, चिक, तमगा, तमंचा, तोप, तोपची, दारोगा, बख्शी, बावर्ची, बेग, बेगम, चम्मच, लाश, सौगात, बीबी, चेचक, सुराग, बारूद, नान खताई, गनीमत, रब्बा, मुगल, ठाकुर, आदि तुर्की शब्द है।

फारसी (अरबी) शब्द :– भारत–ईरान के सम्बन्ध बहुत पुराने हैं। ईरानी और भारतीय आर्य भाषाएं एक ही मूल भारत–ईरानी से विकसित हैं। यही कारण है कि कुछ थोड़े से परिवर्तनों के साथ अनेकानेक शब्द संस्कृत और फारसी दोनों से मिलते हैं। जैसे भू–अबू नक्षत्र–अख्तर,

अंगुष्ठ–अगुष्ट, अश्व–अस्प, दन्त–दण्द, दश–दह, मास–माह, नम्र–नर्म, छाया–साया, शोक–सोग, आपत्ति–आफ़त, जार–यार आदि।

हिन्दी में प्रयुक्त फारसी शब्दों की संख्या लगभग 3500 तथा अरबी शब्दों की संख्या 2500 के आस पास है। ये शब्द विषय की दृष्टि से कई प्रकार के हैं। जैसे – **धर्म सम्बन्धी –**मज़हब, रोज़ा, कुरान, खुदा, हज, वली, नबी, शिया, पैगम्बर।

शासन सम्बन्धी शब्द :– चपरासी, सदर आला, तहसीलदार, वकील, मुंसिफ, दीवानी, मुंशी, खजांची, हाकिम, इजलास, अहलकार, सिपाही, अदालत।

सेना सम्बन्धी शब्द :– हौलदार, फौज़, रिसालदार, हमला, गोंलदाज, संगीन, कमान, तीर आदि।

पोशाक सम्बन्धी शब्द :– मोज़ा, पाजामा, कमीज़, जुराब, दस्ताना, साफ़ा, शलवार आदि।

स्थान सम्बन्धी शब्द :– परगना, मुहल्ला, कूचा, देहात, शहर, तहसील, जिला, कस्बा आदि।

पत्र व्यवहार सम्बन्धी शब्द :– हरकारा, ख़त, लिफ़ाफ़ा, पता आदि।

अन्न, फल, मेवा, सब्जी सम्बन्धी शब्द :– गंदुम, अंजीर, बादाम, सेब, खूबानी, अनार, अंगूर, आलूचा, नाशपाती, मुनक्का, किशमिश, शहतूत, पिस्ता, शरीफ़ा, तरकारी, पुदीना, शलगम, चुकन्दर, खरबूज़, तरबूज़, कद्दू, कुल्फा आदि।

मिठाई–नमकीन सम्बन्धी शब्द :– बरफ़ी, हलवा, जलेबी, शकरपारा, नमकपारा, कलाकन्द, बालुशाही, गुलाब, समोसा आदि।

शृंगार सम्बन्धी शब्द :– इत्र, सुर्मा, साबुन, हजामत, आइना, शीशा, हिना आदि।

फर्नीचर सम्बन्धी शब्द :– कुर्सी, तख्त आदि।

व्यवसाइयों के नाम :– बजाज़, ज़ीनसाज़, बाग़बान, दर्ज़ी, रफूगर, सर्राफ़, रईस, बेलदार, बावर्ची, दलाल, हलवाई, दफ़्तरी, जुलाहा आदि।

बीमारी सम्बन्धी शब्द :– बवासीर, हकीम, नब्ज़, बुखार, बदहज़्मी, जुकाम, नज़ला, लकवा, हैज़ा, नासूर, दवा, जुलाब, मरीज़, बीमार आदि।

विशेषण शब्द :– बेइमान, इमानदार, बदनाम, बारीक़, बेहया, दिलेर, ज़्यादा, बेकार, सख्त, नरम, भुस्तैद, सादा, खुश, परेशान, ज़िन्दा, गन्दा, चालाक आदि।

सर्वनाम शब्द :– खुद, फ़लाँ आदि।

क्रिया विशेषण शब्द :– अक्सर, आखिर, बेशक, ज़रूर, शायद, हरगिज़, हमेशा, ज़बरदस्ती, जल्द, कतई, खामखां आदि।

अव्यय बोधक शब्द :– अगर, व, ब्लकि, कि, वर्ना, लेकिन आदि।

क्रिया शब्द :– खरचना, तराशना, वसूलना, शर्माना, कुबूलना, ख़रीदना, फ़रमाना आदि।

फारसी के माध्यम से हिन्दी में आने वाले अरबी शब्द जैसे – **शासन :–** अदालत, अमीन, बग़ावत, बरी, हिरासत, हाकिम, दफ़ा, मुकदमा, फैसला, इंसाफ, मुन्सिफ़, वज़ीर आदि।

धर्म सम्बन्धी शब्द :– हज, हलाल, ईद, हराम, जिन्न, मज़हब, मोहर्रम, औलिया, दुआ, सलाम, शैतान आदि।

चिकित्सा सम्बन्धी शब्द :– बलगम, बवासीर, दिक़, हकीम, अ़र्क, जुलाब, लकवा, मवाद, मर्ज़,

मरीज़, नब्ज़, नुस्खा, इलाज आदि।

शिक्षा सम्बन्धी शब्द :— किताब, इम्तिहान, कलम, कागज़ आदि।

पुर्तगाली शब्द :— पुर्तगाली शब्द हिन्दी में बंगली आदि भाषाओं के माध्यम से आये हैं। हिन्दी में इनकी संख्या 100 से कम ही है। कुछ शब्द जैसे—अलमारी, अन्नानास, आत, अलकतरा, आया, आलपिन, इस्त्री, इस्पात, कनस्तर, कप्तान, कमरा, कर्नल, काज, काफ़ी, काजू, कोको, क्रूस, गमला, गिरजा, गोभी, गोदाम, चाबी, चाय, जँगला, तम्बाकू, पीपा, फर्मा, बम्बा, बाल्टी, बिस्कुट, बोतल, मस्तूल, मिस्त्री, यीशू, लबादा, संतरा, साया, पगार आदि।

अंग्रेजी के शब्द :— 18वीं सदी के अंतिम चरण में अंग्रेजी के बहुत सारे शब्द बोलचाल के माध्यम से हिन्दी में आये जैसे, गैजेट, नोटिस, कम्पनी, कौंसल, लाइसंस आदि। किन्तु जब अंग्रेजी शिक्षा का प्रर्याप्त प्रचार होने लगा तो पुस्तकों में भी ये शब्द आने लगे। आरम्भ में इन्हें हिन्दी उच्चारण के अनुकूल सरलीकृत किया गया जैसे लार्ड से लाट्, आर्डरली से अर्दली, ऑगस्ट से अगस्त, ट्रेज़री से तिजोरी, ब्रश से बुकश आदि। अंग्रेजी उच्चारण एवं वर्तनी का अनुकरण करते हुए इन शब्दों का सरलीकृत रूप लुप्त हो गया तो ये शब्द हिन्दी में परिनिष्ठित ही मान लिये गये जैसे – कल्ट्टर, आफ़िस, कालेज, वार्निश, पंचर, इस्कूल, इस्टेशन, पैटमैन, पलस्तर के स्थान पर कलेक्टर, ऑफ़िस, कॉलिज, वार्निश, पंक्चर, स्कूल, स्टेशन, प्वाइन्टसमैन, प्लास्टर आदि अधिक परिनिष्ठित माने जाते हैं।

हिन्दी में इस समय अंग्रेजी शब्दों की संख्या तीन हजार से ऊपर है। इनके कुछ प्रमुख वर्ग निम्नलिखित हैं –

धातुओं के नाम — जर्मन, सिल्वर, निकल, टिन, प्लेटिनम आदि।

यन्त्रों के नाम — टाइपराइटर, इंजन, मोटर, कैमरा, टेलीफोन, टेलीविज़न, मीटर, मशीन, रेडियो आदि।

सवारियों के नाम — ट्रक, बस, कार, टेम्पो, टेक्सी, साइकल, स्कूटर, ट्रेन, लारी आदि।

चिकित्सा सम्बन्धी शब्द :— ऑपरेशन, अस्पताल, टीबी, प्लेग, कॉलरा, टाइफाइड, थर्मामीटर, टिक्चर आदि।

शिक्षा सम्बन्धी शब्द :— नर्सरी, यूनीवर्सिटी, मास्टर, लैक्चर, रिसर्च, स्कॉलर, रीडर, प्रोफेसर, प्रिन्सीपल आदि।

पोशाक सम्बन्धी शब्द :— पेंट, कोट, ओवरकोट, टीशर्ट, फ्रॉक, कॉलर, नाइलन, टेरीलीन, गाउन, हैंडलूम आदि।

शासन तथा न्याय सम्बन्धी शब्द :— इन्सपेक्टर, हाइकोर्ट, डिप्टी कलेक्टर, कमिश्नर, जज, एडवोकेट, बैरिस्टर आदि।

महीनो के नाम :— जनवरी, फरवरी आदि।

खेल सम्बन्धी शब्द :— टीम, हॉकी, फुटबॉल, मैच, बैडमिन्टन, गोल, गोलकीपर आदि।

पोस्ट ऑफिस सम्बन्धी शब्द :— पोस्टमैन, पोस्टमास्टर, मनीआर्डर, रजिस्ट्री, बुकपोस्ट, इन्श्योर्ड आदि।

कला सम्बन्धी शब्द :— आर्ट, ब्रश, स्कैच, सीनरी, फोटो, फिल्म, नेगेटिव आदि।

खान पान सम्बन्धी शब्द :– आइसक्रीम, लेमन, सोडा, डबलरोटी, बिस्कुट, पेस्ट्री, टोस्ट, आमलेट, कटलेट, हॉट डॉग, बियर, सूप इत्यादि।

शृंगार सम्बन्धी शब्द :– पाउडर, नेल पालिश, लिपस्टिक, सेंट, रूज़, हेयर पिन आदि।

भवन विषयक शब्द :– गैलरी, हॉल, गौराज, फ्लैट, क्वार्टर आदि।

विशेषण शब्द :– सीनीयर, जूनियर, प्योर, फाइन, आदि।

संख्याबोधक शब्द :– फर्स्ट, थर्ड, सैंचुरी आदि।

अव्यय शब्द :– हर्रे, हुर्रा, डेली, वीकली आदि।

क्रिया शब्द :– फिल्माना, किक लगाना, फेल करना, हिट मारना, कटिंग करना, शेव करना आदि।

फ्रांसीसी शब्द :– कार्तूस, कूपन, रूज, कप, केबल, बेसिन, लैम्प, टेबुल, मार्शल, मशीन, पिकनिक आदि।

डच शब्द :– तुरूप (ट्रंप, ताश में) इस्क्रूप (स्क्रयू) आदि।

स्पेनी शब्द :– अंग्रेजी के माध्यम से आने वाले स्पेनी शब्द जैसे पीउन, सिगार, सिगरेट आदि शब्द।

अंग्रेजी के माध्यम से **रूसी शब्द** – रूबल, ज़ार, बोदका। **जर्मन शब्द** :– लॉटरी, गजट, रॉकेट, पिआनो, वायलिन, ओपेरा। **जापानी शब्द :–** रिक्शा, हाराकिरी, तथा **अफ्रीकी शब्द :–** जेंब्रा, चिम्पैंजी आदि हिन्दी में आये हैं।

अनेक भारतीय भाषाओं के शब्द भी हिन्दी में आये हैं, जिससे हिन्दी का शब्द भण्डार समृद्ध हुआ है। **मराठी –** वाङ्मय, चालू, बाड़ा। **गुजराती –** गरवा, हड़ताल, श्रीखण्ड। **बंगाली –** कविराज, उपन्यास, गल्प, नितांत, रसगुल्ला, चमचम। **उड़िया –** अटका। **पंजाबी –** सिक्ख, छोले, खालसा, ठाठा, भंगड़ा, कुड़माई आदि।

1.3.5 सारांश :–

इस पाठ में भाषा के विविध रूपों का संक्षिप्त परिचय देने हुए उनका विवेचन किया गया है। भाषा के इन रूपों के आधारों को भी वर्णित किया गया है। यह आधार ऐतिहासिक, भौगोलिक, प्रायोगिक और निर्माण रूप पर आधारित हैं। इन्ही के आधार पर मूलभाषा, व्यक्तिबोली, उप बोली, बोलचाल की भाषा, रचनात्मक भाषा, राष्ट्र भाषा, राज भाषा, सम्पर्क भाषा तथा संचार भाषा के रूप विकसित हुए जिनका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया।

यह सत्य है कि हिन्दी शब्द भंडार संस्कृत, पालि, प्राकृत अपभ्रंश से होते हुए विकसित हुआ है। आदिकालीन हिन्दी साहित्य का शब्द भण्डार बहुत कुछ अपभ्रंश जैसा है। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में शब्द–भंडार के क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए जैसे भक्ति प्रचार के कारण लोगों का ध्यान संस्कृत के धार्मिक साहित्य की ओर गया अतः तत्सम शब्दों में वृद्धि हुई। मुगल शासन के कारण फारसी, अरबी, तुर्की शब्दों की संख्या में वृद्धि हुई। यूरोपीय लोगों से सम्पर्क के कारण पुर्तगाली, अंग्रेजी और अन्य यूरोपीय भाषाओं के शब्द हिन्दी में आये। इसी प्रकार आधुनिक काल में छायावाद की तत्सम–प्रवृत्ति के बाद प्रगतिवाद ने हमारे शब्द भण्डार हो तत्सम से बोलचाल की ओर मोड़ दिया। इसके अतिरिक्त विभिन्न ज्ञानानुशासनों के विकास के कारण पारिभाषिक

शब्दावालियों का निर्माण किया जाने लगा। इस काल में तत्सम शब्दों की अपेक्षा तद्भव और विदेशी शब्दों का प्रयोग बढ़ने लगा। इस पाठ में हिन्दी शब्द भण्डार के विभिन्न स्त्रोतों का विवेचन करते हुए तत्सम, अर्ध तत्सम, तद्भव, देशज और आगत शब्दावलियों का विवेचन किया गया है।

1.3.6 अभ्यास प्रश्नावली :–

1. भाषा के विभिन्न रूप–आधार कौन कौन से हैं ?
2. व्यक्ति बोली और उपबोली में अन्तर और अन्तर–सम्बन्ध क्या है ?
3. राष्ट्र भाषा से आपका क्या अभिप्राय है ?
4. राज भाषा और राष्ट्र भाषा के दो अन्तर स्पष्ट कीजिए ?
5. सम्पर्क भाषा किसको कहते हैं ?
6. धार्मिक सम्पर्क और साहित्यिक सम्पर्क से आपका क्या अभिप्राय है ?
7. शब्द–भण्डार से क्या अभिप्राय है ?
8. शब्द भण्डार के विविध स्त्रोतों का वर्णन करें ?
9. तत्सम और तद्भव के अन्तर को स्पष्ट करें ?
10. देशज शब्दों से क्या अभिप्राय है ?
11. हिन्दी में व्यवहृत 20 अग्रेंजी शब्दों को लिखें।

नोट (ऊपर लिखित प्रश्नों के 4–5 पंक्तियों में उत्तर दें।)

1.3.7 शब्दावली

मूल भाषा	–	भाषा का आरम्भिक रूप
राज भाषा	–	राजकाज की भाषा
संचार भाषा	–	प्रचार–प्रसार की भाषा
व्यापक	–	विस्तृत
अल्पकालिक	–	थोड़े समय के लिये
आदान–प्रदान	–	विचार विनिमय
काल सापेक्ष	–	समय के अनुरूप
सृजनात्मक	–	सृजन कार्य/साहित्य–रचना

पाठ संख्या : 1.4 **लेखिका : डॉ. रजिन्द्र कौर अनेजा**

हिन्दी भाषा का मानकीकरण

1.4.0 उद्देश्य
1.4.1 भूमिका
1.4.2 मानकीकरण से अभिप्राय
1.4.3 मानकीकरण के अभिलक्षण
1.4.4 मानकीकरण के उपादान
1.4.5 हिन्दी भाषा के मानकीकरण
1.4.6 हिन्दी भाषा का मानकीकरण : विविध स्तर
    1.4.6.1 उच्चारण स्तर
    1.4.6.2 रूप–रचना स्तर
    1.4.6.3 शब्द–अर्थ स्तर
    1.4.6.4 वर्तनी स्तर
1.4.7 मानकीकरण की प्रक्रिया
1.4.8 सारांश
1.4.9 अभ्यास प्रश्नावली
1.4.10 शब्दावली

1.4.0 उद्देश्य :–

इस पाठ के अन्तर्गत हिन्दी भाषा के मानकीकरण पर विस्तृत जानकारी दी जायेगी। मानकी करण से अभिप्राय, उसके अभिलक्षण, उपादान, विभिन्न स्तरों पर मानकीकरण जैसे उच्चारण स्तर, रूप रचना स्तर, शब्द–अर्थ स्तर, वर्तनी स्तर तथा मानकीकरण की विभिन्न प्रक्रियाओं का विस्तृत विवेचन किया जायेगा।

1.4.1 भूमिका :–

हिन्दी सम्पूर्ण भारत की घोषित राजभाषा है। शिक्षा का माध्यम, राजकाज आदि के अतिरिक्त राज्य के स्तर पर भी अपनी भाषा के रूप में भारत इसी का प्रयोग कर रहा है। ऐसी स्थिति में इसका सर्वस्वीकृत मानक रूप अनिवार्यतः आवश्यक है। यूँ तो कहा जाता है कि भाषा की मानकता एक कल्पना है। भाषा बहुत ही लचीली होती है। लाख कोशिश करके उसका मानक रूप निश्चित कर लिया जाये, किन्तु उसका प्रयोक्ता जाने–अनजाने नित नये प्रयोग, नई गलतियाँ करता रहता है और इसी कारण भाषा समय के साथ बदलती, विकसित होते और आगे बढ़ती रहती है। किन्तु फिर भी भाषा सर्वस्वीकृत नहीं तो बहुस्वीकृत मानक रूप अवश्य होता है और उस भाषा के शिक्षित प्रयोक्ता उससे थोड़ा–बहुत हटने के बावजूद भी उसी के इर्द गिर्द घूमते रहते हैं।

1.4.2 मानकीकरण से अभिप्राय :–

मानकीकरण शब्द अंग्रेजी के स्टेन्डरडाइजेशन (Standardization) शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। मानकीकरण में विविध स्तरों पर पायी जाने वाली विषमरूपता या अनेकरूपता को दूर कर एकरूपता या समरूपता लाने का प्रयत्न किया जाता है। वास्तव में मानकीकरण एक प्रक्रिया है जो प्रयत्नपूर्वक की जाती है। मानकीकरण को एक प्रकार से अमूर्त आदर्श कहा जाता है क्योंकि भाषा का कोई भी वक्ता मानक भाषा के व्यवहार का दावा नहीं कर सकता। यह सच है कि वक्ता के मानस में एक आदर्श रहता है। यह आदर्श उच्चारण, शब्द रूपों एवं संरचना का होता है। वास्तव में आदर्श रूप की एक अभूर्त संकल्पना रहती है और इस आदर्श तक पहुँचने की उसकी इच्छा भी रहती है। इसीलिये यह संचेतन प्रक्रिया है।

भाषा के स्वनिम, रूपिम, वाक्य आदि प्रत्येक स्तर पर विविध रूपता आ जाती है। एक ध्वनि के एक से अधिक उच्चारण होने लगते हैं। एक ध्वनि के लिये एकाधिक लिपि चिह्न भी चल पड़ते हैं, वाक्य के स्तर पर भी विविध प्रयोग होने लग जाते हैं जिससे भाषा के प्रत्येक स्तर पर विविध रूपता आ जाती है। जैसे हिन्दी में 'ओ' के अनेक उच्चारण हैं। बिहार का आदमी हिन्दी 'ओ' का उच्चारण 'अउ' करता है। यह क्षेत्रीय प्रभाव के कारण होता है। मानकीकरण की प्रक्रिया में इस प्रकार के भेदीकरण स्वीकार नहीं किये जाते ब्लकि समरूपता लाने का प्रयास किया जाता है।

क्षेत्रीय बोलियों के सम्पर्क के कारण एक वस्तु के लिये अनेक शब्द रूप भाषा में आ जाते हैं। इन शब्दों के साथ बोलियों में प्रचलित लिंग भी आते हैं। परिणामता एक शब्द दो लिंगों में सुनाई पड़ता है –

'दही खट्‌टा है।'
'दही खट्टी है।'

इसी प्रकार एक प्रक्रिया के दो रूप प्रचलित हो जाते हैं। जैसे –

1. मैने नहीं करा ('करा' अमानक है)
   मैने नहीं किया (मानक)
2. आप वहाँ मत जाया करिये ('करिये' अमानक)
   आप वहाँ मत जाया कीजिए (मानक)

मानकीकरण के अन्तर्गत इस प्रकार की विविधरूपता स्वीकार नहीं की जाती बल्कि एक समरूप उच्चारण निर्धारित किया जाता है।

1.4.3 मानकीकरण के अभिलक्षण :–

भाषा में विषमरूपता समाप्त कर समरूपता लाने का प्रयास ही मानकीकरण कहलाता है। मानकीकरण के निम्नलिखित अभिलक्षण हैं –

1.4.3.1 समरूपता :– समरूपता मानकीकरण का प्रथम अभिलक्षण है। इसके अन्तर्गत ध्वनियों के विषम उच्चारणों के स्थान पर समरूप उच्चारणों का निर्धारण कर उन्हें मानक माना जाता है। एक ध्वनि को प्रकट करने के लिये प्रचलित विविध लिपि प्रतीकों में से एक को मान्यता दी जाती है और सर्व समान रूप से उस एक मान्य रूप के प्रयोग पर जोर दिया जाता है। शब्दों की वर्तनी में भी समरूपता का विधान किया जाता है।

1.4.3.2 भाषा में स्थिरता :– मानकीकरण से भाषा में स्थिरता आती है। रूप निश्चित होते हैं, प्रयोगों का निर्धारण होता है। इस स्थिरता में लचीलापन होता है। मानकीकरण से स्थिर हुई भाषा भी नये ज्ञान–विज्ञान और जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये नये प्रयोगों को स्वीकार करने के लिये तैयार रहती है।

1.4.3.3 अनुकूलित सर्वग्राह्यता :– सर्वग्राह्यता समाज की स्वीकृति है और बिना सामाजिक स्वीकृति के मानकीकरण का कोई अर्थ नहीं। अनुकूलन की यह प्रक्रिया समुदाय द्वारा स्वीकृत होनी चाहिये। वक्ता समाज यह स्वीकार करे कि अमुक रूप मानक है और इसी का प्रयोग करना चाहिये। यह भी निश्चित करना पड़ेगा कि दूसरी भाषाओं से आगत शब्द किस प्रक्रिया से अनुकूलित होकर ग्राह्य होंगे। हिन्दी में शॉंपिग (Shopping) शब्द चल पड़ा है। शॉंपिंग संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होकर 'करना' क्रिया के साथ 'शॉंपिंग करना' बनता है। यह अनुकूलन की ही प्रक्रिया हैं।

1.4.3.4 ऐतिहासिक परम्परा का अनुरक्षण :– प्रत्येक भाषा की अपनी ऐतिहासिक परम्परा होती है – जैसे – ध्वनियों के उच्चारण की परम्परा, शब्द–निर्माण विधि की परम्परा, वाक्य–विन्यास की परम्परा। इन परम्पराओं में ही भाषा की पहचान सुरक्षित रहती है। मानकीकरण में ऐसे अनुकूलन ने हो तो भाषा की प्रकृति ही समाप्त हो जाये।

1.4.3.5 जीवंतता :– मानकीकरण का यह महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण है। कोई भी भाषा तभी जीवन्त कही जा सकती है जब वह अपने युग की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सक्षम हो, जीवन की क्रिया–प्रक्रियाओं को अभिव्यक्त करने में सशक्त हो। जीवन्त रहने के लिये भाषा नवीन रूप धारण करती है तथा नये प्रयोग स्वीकार करती है।

1.4.3.6 क्षेत्र निरपेक्षता :– मानक भाषा का विकास क्षेत्र–विशेष में प्रचालित बोली के आधार पर होता है किन्तु विकसित होने के बाद भाषा का मानक रूप क्षेत्र–निरपेक्ष हो जाता है। खड़ी बोली का विकास मेरठ की बोली से हुआ पर उस पर आधारित मानक हिन्दी आज मेरठ क्षेत्र में ही सीमित नहीं है, अब वह क्षेत्र निरपेक्ष है। मानकीकृत भाषा में औपचारिकता होती है तथा क्षेत्रीय रूप में अनौपचारिकता बनी रहती है। अतः क्षेत्र निरपेक्षता मानक भाषा का एक और विशिष्ट अभिलक्षण है।

1.4.3.7 विकल्पन :– मानक भाषा में विकल्पन स्वीकृत होते हैं। यह विकल्पन साभिप्राय होते हैं और प्रयोजनों से जुड़े होते हैं। 'दर्शन लाभ करने जाना' और 'मिलने जाना' विकल्पन ही हैं। दोनों मानक भी हैं। पर दोनों का अभिप्राय तथा प्रयोजन अलग अलग है। इस प्रकार के विकल्पन मानक भाषा में स्वीकृत होते हैं।

1.4.4 मानकीकरण के उपादान :–

मानकीकरण के निम्नलिखित उपादान हैं –

1.4.4.1 व्याकरण :– अमानक स्थिति से मानकता तक पहुँचने के लिये व्याकरण की आवश्यकता होती है। व्याकरण ही अनुकूलन आदि नियमों का निर्धारण करता है। इसीलिये मानकीकरण के लिये व्याकरण पहला महत्त्वपूर्ण उपादान माना गया है।

1.4.4.2 कोश :– कोश इसका दूसरा महत्त्वपूर्ण उपादान है। कोश से शब्द के मुख्यार्थ का बोध होता है तथा गौण अर्थों का पता चलता है। व्याकरण और कोश के बिना किसी भाषा की मानकता पर विचार करना संभव नहीं है।

1.4.4.3 साहित्य :– मानक भाषा के प्रसार के लिये साहित्य एक महत्त्वपूर्ण साधन है। यहाँ साहित्य का तात्पर्य सभी ज्ञान क्षेत्रों से सम्बद्ध सामग्री हैं। पढ़े–लिखे लोगों तक भाषा का मानक रूप इसी साहित्य के माध्यम से पहुँचता है।

1.4.5 हिन्दी भाषा के मानकीकरण :–

मानकीकरण की प्रक्रिया भाषा में परिनिष्ठित प्रयोगों का निश्चय करती है तथा प्रतिमान निर्धारित करती है। इन प्रतिमानों के आधार पर निश्चित किया जाता है कि कौन से प्रयोग मान्य हैं और कौन से मान्य नहीं हैं। मान्यता के आधार पर ही भाषा का रूप प्रतिष्ठित होता है, वह सभी के लिये समझ में आने के योग्य होती है। भाषा का एक सुनिश्चित प्रयोजन है। मानकीकरण से भाषा के प्रयोजन को सिद्ध करने में सुविधा होती है।

हिन्दी भाषा के मानकीकरण से अभिप्राय है हिन्दी भाषा का वह रूप जो उच्चारण, रूप रचना, वाक्य–रचना शब्द और शब्द रचना, अर्थ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, प्रयोग तथा लेखन आदि की दृष्टि से, इस भाषा के सभी नहीं तो अधिकांश सुशिक्षित लोगों द्वारा शुद्ध माना जाता है। मानकता अनेकता में एकता की खोज हैं।

1.4.6 हिन्दी भाषा का मानकीकरण : विविध स्तर :–

हिन्दी भाषा के मानकीकरण का विस्तृत विवेचन विविध स्तरों के आधार पर किया जा सकता है। ये स्तर निम्नलिखित हैं :–

1.4.6.1 उच्चारण स्तर :– उच्चारण स्तर पर ध्वनियों के आधार पर स्वर और व्यंजन ध्वनियों के उदाहरण प्रस्तुत हैं :–

(क) स्वर :– 'ऐ' के मुख्य रूप से तीन उच्चारण मिलते हैं –

ए, अइ, आई

राजस्थानी हिन्दी में 'ऐ' का उच्चारण 'ए' रूप में होता है –

पैसा – पेसा
पैर – पेर

बिहारी हिन्दी में 'ऐ' का उच्चारण 'अइ' के रूप में होता है :–

पैसा – पइसा
वैसा – वइसा

सामान्य मानक उच्चारण 'ऐ' के रूप में पैसा, वैसा, कैसा आदि है।

'औ' के विभिन्न उच्चारण 'ओ', 'अउ' आदि मिलते हैं – राजस्थानी हिन्दी में 'औ' का उच्चारण 'ओ' की तरह होता हैं –

और – ओर
औरत – ओरत

बिहारी हिन्दी में इसका उच्चारण 'अउ; की तरह होता है –

और – अउर
औरत – अउरत

(ख) व्यंजन :– बोलियों तथा उपभाषाओं के व्याधात के कारण ध्वनियों के उच्चारण में विषमरूपता उत्पन्न हो जाती है। अनेक क्षेत्रों में 'श' को 'स' (शहर–सहर, भाषा–भासा), क्ष को

छ (क्षमा–छमा, क्षेत्र–छेत्र) या च्छ (शिक्षा–सिच्छा, भिक्षा–भिच्छ) य को ज (यज्ञ–जज्ञ) तथा व को ब (विद्यार्थी–बिद्यार्थी) बोलने और लिखने की गलती लोग करते हैं। हिन्दी में क्रमशः श, क्ष, य, व, आदि ही बोला और लिखा जाना चाहिये। इनके स्थान पर स, छ, ज और ब आदि नहीं। हिन्दी के मानक रूप के निर्धारण में ध्वनि के स्तर पर बलाघात, अनुतान, संहिता आदि अन्य दृष्टियों में कोई ख़ास समस्या नहीं है।

1.4.6.2 रूप–रचना स्तर :– हिन्दी रूप रचना में अमानक तत्त्व बहुत ही कम हैं। व्याकरणिक भागों की दृष्टि से संज्ञा में अमानक प्रयोग न के बराबर हैं। पंजाबी के प्रभाव से मामे के (मामा के घर) लाले से (लाला से) जैसे कुछ प्रयोग कभी–कभी सुनाई पड़ जाते हैं किन्तु उनके अमानक होने के विषय में कोई विवाद नहीं है।

सर्वनाम के रूपों में मेरे, तेरे (मेरे को, तेरे से) जैसे अमानक प्रयोगों से बचना चाहिये।

क्रिया रूपों में 'करिये' के स्थान पर 'कीजिए', 'करा' के स्थान पर 'किया', 'करियेगा' के स्थान पर 'कीजिएगा' आदि मानक रूपों का प्रयोग करना चाहिये।

वाक्य रचना में क्रम तथा अन्वय की दृष्टि से अमानक प्रयोग बहुत कम हैं क्योंकि व्याकरणिक स्तर पर हिन्दी का मानक रूप एक सीमा तक विकसित हो चुका है।

हिन्दी भाषा में लिंग की समस्या भी थोड़ी जटिल है, किन्तु वास्तविक प्रयोग में 20–25 से अधिक ऐसे शब्द नहीं हैं जिनके लिंग को लेकर विवाद हो। जैसे दही, तकिया, तौलिया, कोट, रूमाल, खेल, कलम, पैंट आदि। इसे हम चिन्ता का कारण नहीं मानते।

1.4.6.3 शब्द–अर्थ स्तर :– हिन्दी के मानक स्वरूप को निर्धारित करने में सबसे बड़ी समस्या शब्द और अर्थ की है। जैसे –

चिट्ठी गेरी (मेरठ आदि)
चिट्ठी छोड़ी (पूर्व में)
चिट्ठी डाली (पश्चिम में)

इसी प्रकार 'कीड़ी' सामान्य शब्द है। हरियाणा में इसको 'चींटी' कहते हैं। इसी प्रकार दिल्ली में बोली जाने वाली 'तोरी' इलाहाबाद–बनारस में 'नेनुवाँ', बलिया में 'घेवड़ा' बोली जाती है।

पारिभाषिक शब्दावली की दृष्टि से हिन्दी में बहुत अव्यवस्था है। एक ही शब्द के लिये दो–दो, तीन–तीन शब्दों का प्रचलन उचित नहीं ठहराया जा सकता। पारिभाषिक शब्दावली में एकरूपता लाने की दिशा में हिन्दी को सबसे अधिक प्रयत्नशील होने की आवश्यकता है।

1.4.6.4 वर्तनी स्तर :– हिन्दी भाषा में अनेक ध्वनियों के लिये दो लिपि चिह्न चलते हैं। मानकीकरण की प्रक्रिया में इनमें से एक रूप को स्वीकार किया गया है। हिन्दी में ऐसे वर्ण निम्नलिखित हैं :–

मानक	**अमानक**	**मानक**	**अमानक**
अ	प्र	ऊ	अू
आ	प्रा	ए	अे
इ	अि	ऐ	अै
ई	अी	छ	द्द
उ	अु	ल	क्त

झ	भ	अं, अः	प्रं, प्रः
ण	रा		
घ	ध		

हिन्दी में संयुक्त वर्ण लिखने के ढंग का मानकीकरण किया गया है। जैसे – क्ष, त्र, ज्ञ, श्र, अनुनासिकता व्यक्त करने की मानक विधि अपनायी गयी है। अनुनासिकता स्वर का गुण है। लिपि में अनुनासिकता दो प्रकार से प्रकट होती है – चंद्र बिन्दु (ँ) तथा बिन्दु (ं) के द्वारा। हिन्दी की मानक वर्णमाला इस प्रकार है –

मानक हिन्दी वर्णमाला :–

स्वर :– अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ ए, ऐ, ओ, औ।

मात्राएं :– ा, ि, ी, ु, ू, ृ, े, ै, ो, ौ।

अनुस्वार :– (अं)

विसर्ग :– (अः)

व्यंजन :–

क ख ग घ ङ
च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ ण ड़ ढ़
त थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल व
श ष स ह

संयुक्त व्यंजन :– क्ष त्र ज्ञ श्र

हल् चिन्ह :– (ड्)

गृहीत स्वर :– ऑ, ख़, ज़, फ़

देवनागरी अंक

१ २ ३ ४ ५
६ ७ ८ ९ १०

भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप

1 2 3 4 5
6 7 8 9 10

हिन्दी वर्तनी की सबसे बड़ी समस्या अनेकरूपता को लेकर है जैसे – य, व के स्तर पर –

जाए	जाये	जावे
हलुआ	हलवा	हलवा
रोए	रोये	रोवे

विसर्ग तथा हल् चिह्न के स्तर पर –

जगत्	जगत
महान्	महान

द्वित्व व्यंजन के स्तर पर –

कर्ता	कर्त्ता
वर्मा	वर्म्मा

अनुस्वार के स्तर पर –

सांस	साँस
पूंछ	पूँछ

अन्य स्तर –

यमुना	जमुना
राज्य	राज
त्योहार	त्यौहार
राजनैतिक	राजनीतिक
बहिन	बहन
सिर	सर
रखा	रक्खा
अक्लमंद	अकलमंद
इम्तिहान	इम्तहान
इजाज़त	इजाजत
अप्रैल	एप्रिल

हिन्दी वर्तनी में ऐसे अमानक प्रयोग अज्ञान के कारण मिलते हैं। जैसे सौन्दर्यता, माधुर्यता अमानक है। सौन्दर्य, माधुर्य ही मानक हैं। सुन्दरता और मधुरता भी मानक हैं।

उपर्युक्त विवेचन में हिन्दी वर्तनी के संदर्भ में मानक प्रयोगों को स्पष्ट किया गया है। इनका हमें भली भांति ध्यान रखना चाहिये तथा भाषा के मानक प्रयोग ही किये जाने चाहिये ताकि भाषा में समरूपता बनी रहे। मानक प्रयोगों से भाषा व्यवस्थित रहती है तथा सभी के लिये बोधगम्य भी होती है।

1.4.7 मानकीकरण की प्रक्रिया :–

हिन्दी भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया चार चरणों में पूरी होती है –

1.4.7.1 चयन :– किसी भाषा के विविध क्षेत्रीय या सामाजिक रूपों में किसी एक का सर्वप्रथम मानक भाषा के रूप में चयन होता है। इस चयन का आधार उस रूप का देश को राजधानी के समीप बोला जाना, धर्म, राजनीति एवं साहित्य आदि के कारण उसका महत्त्व होता है।

1.4.7.2 प्रसार :– मानक रूप के निर्धारित होने के बाद वह अपने क्षेत्र से बाहर प्रसार पाने लग जाता है।

1.4.7.3 प्रयोग :– भाषा का मानक रूप धीरे–धीरे उस भाषा की सभी बोलियों, उपबोलियों एवं सामाजिक बोलियों पर छा जाता है और साहित्य, शिक्षा, प्रशासन, समाचार पत्र आदि में प्रयुक्त होने लग जाता हैं। इस प्रकार वह विशेष क्षेत्र का होने पर भी सर्वक्षेत्रीय हो जाता है।

1.4.7.4 स्वीकृति :– इस प्रकार किसी सीमित क्षेत्र, सीमित प्रयोग और सीमित वर्ग की भाषा या बोली को भाषा–विशेष के सभी लोगों द्वारा स्वीकृति मिल जाती है।

इस प्रकार चयन, प्रसार, प्रयोग तथा स्वीकृति के द्वारा कोई भी भाषा या बोली मानक भाषा बन जाती है।

1.4.8 सारांश :–

यह सत्य है कि मानक भाषा एक प्रकार से सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक होती है। उसका सम्बन्ध भाषा की संरचना से न होकर सामाजिक स्वीकृति से होता है। समाज में एक वर्ग मानक होता है जो अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण होता है तथा समाज में उसी का बोलना, लिखना, उसी का खाना–पीना, उसी के रीति–रिवाज अनुकरणीय माने जाते हैं। मानक भाषा मूलतः उसी वर्ग की भाषा होती है।

इस पाठ में मानकीकरण से अभिप्राय, मानकीकरण के अभिलक्षण, उपादान तथा हिन्दी भाषा के मानकीकरण के विविध स्तरों पर विस्तृत विवेचन किया गया है। साथ ही मानकीकरण ही सम्पूर्ण प्रक्रिया (चयन, प्रसार, प्रयोग, स्वीकृति) का विवेचन किया गया है।

1.4.9 अभ्यास प्रश्नावली :–

1. मानकीकरण से आपका क्या अभिप्राय है ?
2. मानकीकरण के अन्तर्गत समरूपता की क्यां संकल्पना है ?
3. अनुकूलित सर्वग्राहयता किसको कहते हैं ?
4. हिन्दी भाषा के मानकीकरण के उच्चारण स्तर की उदाहरण साहित विवेचना करें ?
5. हिन्दी की मानक वर्ण माला का ध्यान से पाठ करें ?
6. मानकीकरण की प्रक्रिया के विविध सोपानों की चर्चा करें ?

1.4.10 शब्दावली :–

समरूपता	–	समानता
सर्वग्राहयता	–	सभी तरफ से ग्रहण करने योग्य
क्षेत्र निरपेक्षता	–	विशेष भौगोलिक सीमा से बाहर
वर्तनी	–	भाषा का लिखित रूप
चयन	–	चुनाव
प्रसार	–	विस्तार, फैलाव
प्रतिष्ठा	–	सम्मान
अभिलक्षण	–	विशेष गुण

पाठ संख्या : 2.1 **लेखिका : डॉ0 कुलदीप कौर**

रसखान, सेनापति

इकाई की रूपरेखा :

2.1.0 उद्देश्य
2.1.1 प्रस्तावना
2.1.2 रसखान का व्यक्तित्व और कृतित्व
2.1.3 काव्यगत विशेषताएं
2.1.4 सेनापति का व्यक्तित्व और कृतित्व
2.1.5 काव्यगत विशेषताएं
2.1.6 सप्रसंग व्याख्या
2.1.7 लघु प्रश्नोत्तर
2.1.8 सहायक पुस्तकें
2.1.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.1.0 उद्देश्य :

आप इस पाठ के अन्तर्गत कृष्ण भक्त कवि रसखान से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के पश्चात्

* रसखान के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
* रसखान की काव्यगत विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
* काव्य की सप्रसंग व्याख्या कर सकेंगे।

2.1.1 प्रस्तावना :

मध्ययुगीन कृष्ण काव्य–धारा में रसखान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने धर्म और सम्प्रदाय की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए एक भक्त की अनन्य भक्ति को अभिव्यक्त किया है। मुसलमान होते हुए भी इनका कृष्ण प्रेम वर्णन एक प्रतिभाशाली और प्रबुद्ध साहित्यकार का उदाहरण है। इनका प्रेम वासनामूलक भावाभिव्यंजना नहीं है बल्कि वासनामुक्त शुद्ध प्रीति है जो अलौकिकता को प्राप्त किए हुए है।

2.1.2 रसखान का व्यक्तित्व और कृतित्व :

व्यक्तित्व :

किसी भी लेखक के साहित्यिक व्यक्तित्व को समझने के लिए उसके व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों को आंकना अति आवश्यक है। निर्माण पृष्ठभूमि में उसके पारिवारिक संस्कारों उन व्यक्तियों या कारणों को जानना भी अति आवश्यक है जो उसे एक साहित्यकार बना देते हैं। प्रस्तुत उपशीर्षक के अन्तर्गत रसखान के व्यक्तित्व निर्माण की पृष्ठभूमि में दृष्टिपात करने का प्रयास है। इनके जीवन वृत्त के सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रमाणिक

सामग्री प्राप्त नहीं होती। फिर भी विद्वानों ने उनकी रचनाओं से कुछ संकेत–सूत्र ग्रहण कर उनके जीवन–वृत्त के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। रसखान दिल्ली के एक पठान सरदार थे। इन्होंने 'प्रेमवाटिका' में अपने आपको शाही खानदान का कहा है–

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान,
छिनहिं बादसा बंस की, ठसक छाँडि रसखान।

इन पंक्तियों के आधार पर रसखान का जन्म 1533 ई0 के आसपास स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि दिल्ली में जब हुमायूँ ने सूरवंशीय पठानों से अपना खोया हुआ शासनाधिकार दोबारा हासिल किया उस समय दिल्ली शमसान हो गई थी और स्वाभाविक है कि रसखान का कवि मन इस नरसंहार को देखकर दिल्ली छोड़ गोकुल जा बसे। वहाँ पर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से वल्लभ–सम्प्रदाय के अन्तर्गत दीक्षा ली थी। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में भी उन्हें वल्लभ सम्प्रदाय का अनुयायी बताया गया है।

कृतित्व :

रसखान की केवल दो रचनाएं प्राप्त होती हैं – 'प्रेमवाटिका' और 'सुजान रसखान'। 'प्रेमवाटिका' के अन्तर्गत कवि ने राधा–कृष्ण के शुद्ध और निर्मल प्रेम का चित्रण किया है। यह 53 दोहों की लघु कृति है। दूसरी रचना 'सुजान रसखान' में कवित्त सवैया छंद में एकनिष्ठ प्रेम की मार्मिक अभिव्यंजना की है। इन्होंने कृष्ण भक्त कवियों के समान गीति–काव्य का आश्रय न लेकर कवित्त सवैया को भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। इसमें कृष्ण संबंधी 149 छंद हैं।

2.1.3 काव्यगत विशेषताएं :

कृष्ण भक्त कवि रसखान की काव्यगत विशेषताएं इस प्रकार हैं –

1. भक्ति भावना : रसखान की भक्ति भावना सूरदास के समान है। इन्होंने भी ईश्वर के सगुण सरूप की आराधना की है। इनका कृष्ण प्रेम, प्रेम की तपन में जलता हुआ विविध भाव रूपों में उमड़ता है। इनके प्रेम की निर्मलता ने इन्हें 'रस की खान' खान बना दिया है। बादशाह वंष में जन्मे मुसलमान कवि रसखान ने शाही वैभव विलास का त्याग कर स्वयं को प्रेम, श्रद्धा और भक्ति के सागर में लीन कर लिया। काव्य रचना करना उनका साध्य नहीं था और न ही उनकी वाणी विलास यश–प्राप्ति के निमित्त थी। प्रस्तुत उदाहरण में इनकी कृष्णभक्ति देखते ही बनती है–

मानुष हों तो वही रसखान बसौं, संग गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हों तो कहा बसु मेरो चरौं नित नंद की धेनु मझारन।
पाहन हों तो वही गिरि को जो कियो हरि छत्र पुरंदर धारन।
जौ खग हों तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन।।

रसखान कृष्ण के एक सच्चे भक्त और प्रेमी की भांति हर परिस्थिति में कृष्ण के समीप ही रहना चाहते हैं। यही नहीं वे अपने आराध्य देव की लकुटी तथा काली कंबली पर तीनों लोगों का राज्य छोड़ देने के लिए प्रस्तुत हैं–

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहुँ पुर को तजि डारौं।
आठहुं सिद्धि नवौ निधि के सुख नंद की गाय चराय बिसारौं।।

2. प्रेम वर्णन :

रसखान का प्रेम वर्णन बड़ा सूक्ष्म, उदात्त और विशद है। इनके काव्य का प्रमुख रस शृंगार है, जिसका आलम्बन हैं–कृष्ण। इनके रूप पर मोहित राधा और गोपिकायों की मनः स्थिति के चित्रण के माध्यम से रसखान ने शृंगार की मधुर अभिव्यंजना की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इनकी प्रेम भावना के विषय में लिखते

हैं – ''प्रेम के ऐसे सुन्दर उद्‌गार इनके सवैयों में निकले कि जनसाधारण प्रेम या श्रृंगार संबंधी कवित्त सवैयों को ही रसखान कहने लगे–जैसे 'कोई रसखान सुनाओ।' रसखान प्रेम के मार्ग को कठिन बताते हुए लिखते हैं –

कमल तंतु सौ क्षीणतर कठिन खड़ग की धार।
अति सूधो टेढ़ो बहुर प्रेम पंथ अनिवार।।

स्वार्थहीन प्रेम को सच्चा प्रेम मानते हुए लिखते हैं –

बिनु गुन यौवन रूप धन, बिनु स्वारथ हित जानि।
शुद्ध कामना से रहित, प्रेम सकल रसखानि।।

विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में, ''उनकी प्रेमाभिव्यक्ति सहज और निर्मल हैं। वस्तुतः उनका प्रेम वासना पंक से बेदाग, निर्बध, उदात्त और अनिर्वचनीय है। वह चित्त का संस्कार करने वाला, प्रेमी मन के अहम का विसर्जन करने वाला, स्त्री–पुरुष की सहज प्रणयाभिव्यक्तियों का उदात्तीकृत रूप है जिसे सात्विक प्रेम की संज्ञा दी जा सकती है।''

3. सौन्दर्य विधान :

रसखान सौन्दर्य के सफल चितेरे हैं। इनके काव्य में सौंदर्य काम, प्रेम और माधुर्य परस्पर पूरक बनकर आए हैं। कृष्ण सौन्दर्य कामना को जन्म देता है। रसखान की सौन्दर्य चेतना स्थूल देह एवं मांसलता से ऊपर उठती हुई अध्यात्म और प्रभु प्रेम में परिवर्तित हो जाती है। इन्होंने कृष्ण के सौन्दर्य को इस प्रकार रूपांकित किया है–

मोतिल माल बनी लट के, लटकी लटवा लट धुँधरवारी।
अंग ही अंग जराव लसै, अरु सीस लसै पगिया जरतारी।।
पूरव पून्यनि ते रसखानि, सु मोहिनी मूरति आनि निहारी।
चारयो दिसानि की लै छवि, आनिकै झाँके झरोखे में बाँके बिहारी।।

कृष्ण–सौन्दर्य के साथ ही राधा के शारीरिक अंगों के सौन्दर्य का भी वर्णन किया है। राधा का सौन्दर्य वर्णन कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं बल्कि भावोत्तजन और रस सिक्त करने वाला है–

अति लाल गुलालहु फूलतैं फूल अली, अलि कुंतल राजत है।
मुक्ता के कदंब के अंब के मौर सुने, सुर कोकिल लाजत है।।

4. शिल्प पक्ष :

किसी भी रचना का शिल्प पक्ष उसका अभिन्न पक्ष होता है क्योंकि शिल्प के द्वारा ही भावों को मूर्तिमान किया जा सकता है दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि शिल्प पद्य रचना के बाह्य पक्ष के साथ सम्बंधित है, भाव अगर आत्मा है तो शिल्प उसका शरीर होता है। अतः इसमें भाषा, अलंकार, छन्द, मुहावरे, लोकोक्ति इत्यादि आते हैं।

रसखान की काव्य भाषा शुद्ध, परिमार्जित एवं साहित्यिक है। माधुर्य और प्रसाद गुण के सहज समावेश ने इसकी काव्य भाषा को अत्यंत सरस और सजीव बना दिया है। विभिन्न लाक्षणिक प्रयोगों के कारण इसमें चुटीलापन आ गया है, उससे इसकी अर्थवत्ता और बढ़ गयी है। रसखान काव्य में अलंकारों का बहुम कम प्रयोग हुआ है। प्रेम की अनुभूति में कवि इतना रसमग्न था कि उसके पास अलंकार प्रयोग का समय ही नहीं था। फिर भी रसखान के काव्य में यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेया, विरोधाभास आदि के उदाहरण मिलते हैं। उपमा का उदाहरण देखिए –

जाको लसै मुख चन्द समान, सुकोमल अंगनि रूप लपेटी।

रसखान ने विषय अनुरूप सवैया, कवित्त एवं दोहा छन्द को काव्य रचना के माध्यम के रूप में चुना है। अपने युग की गेय पद परम्परा को छोड़ कर इन्होंने अपनी स्वच्छंद वृत्ति के अनुसार कवित्त और सवैया छन्द का प्रयोग किया है। इनकी भक्ति किसी सम्प्रदाय के सिद्धांत में आबद्ध नहीं है। इनका श्रृंगार किसी 'रीति' विशेष में सीमित नहीं है क्योंकि इनकी भक्ति हृदय को उन्मुक्त अभिव्यक्ति है। इसीलिए इन्हें स्वच्छंद काव्यधारा का प्रवर्तक कहा जाता है। विद्यानिवास मिश्र इनके शिल्प विधान की विशिष्टता को इस प्रकार व्यक्त करते हैं, ''शब्द सम्पदा, अर्थ गौरव, भाव गरिमा, प्रांजलता, सम्प्रेषण शक्ति और भावाभिव्यंजना की दृष्टि से रसखान काव्य गुणात्मक एवं विशिष्ट है। यद्यपि रसखान घनानंद की भांति ब्रज भाषा प्रवीण और बिहारी की भांति ब्रजभाषा पंडित नहीं हैं, तथापि उनकी ब्रजभाषा की अपनी विशेषता है और वह है उसका ग्राम्य संस्कार, उसकी निरलंकृति और सरलता।''

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि रसखान ने मुसलमान होते हुए भी कृष्ण भक्ति का तन्मयता से गुणमान किया है। इनके जैसे सरस एवं भावुक कवियों पर ही रीझ कर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा है– 'इन मुसलमान कवि जनन पर, कोटिक हिन्दू बारिए'

2.1.4 रसखान का व्यक्तित्व और कृतित्व :

व्यक्तित्व :

कविवर सेनापति (1589–1649 ई0) के जीवन के सम्बंध में अधिक जानकारी नहीं मिलती। जो कुछ भी सूचना ज्ञात है वह इनके ग्रंथ 'कवित्त रत्नाकर' के आधार पर है जो इस प्रकार है –

दीक्षित परसराम दादौ है विदित नाम
जिन कीने जज्ञ, जाकी विपुल बड़ाई है
गंगाधर पिता गंगाधर के समान जाकौ
गंगातीर बसति अनूप जिन पाई है।
महा जानमनि, विद्यादान हूँ में चिंतामनि
हीरामनि दीक्षित तें पाई पंडिताई है।
सेनापति सोई, सीतापति के प्रसादि जाकी,
सब कवि कान दै सुनत कविताई है।

इन काव्य पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि इनके पितामह का नाम परशुराम दीक्षित था तथा इनके पिता का नाम गंगाधर दीक्षित गंगा के किनारे अनूप बस्ती या अनूप शहर में रहते थे। इनके विद्यागुरू का नाम हीरामणि दीक्षित था। सेनापति के पूर्वज मुगल साम्राज्य द्वारा सम्मानित हुए थे जैसा कि पिता गंगाधर के संदर्भ में 'गंगातीर बसति अनूप जिन पाई है' से स्पष्ट होता है। आचार्य शुक्ल का भी यह मानना है कि इनका मुसलमान दरबारों में अच्छा मान रहा है।'

कृतित्व :

सेनापति की केवल दो रचनाओं की चर्चा मिलती है – 'काव्यकल्प द्रुम' और 'कबित्त रत्नाकर'। केवल 'कवित्त रत्नाकर ही उपलब्ध है। यह रचना पाँच तरंगों में विभक्त है। इनमें प्रथम तरंग के अन्तर्गत 97 कवित्तों में विविध प्रकार के विषयों का श्लेष परक वर्णन किया गया है। दूसरी तरंग में 74 श्रृंगार संबंधी और तृतीय तरंग में 70 छंदों विभिन्न ऋतुओं का वर्णन किया गया है। चौथी और पाँचवीं में राम कथा (76 छंदों में), राम के प्रति भक्ति (88 छंदों में) भाव को व्यक्त किया गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'कवित्तरत्नाकर' के मुख्यतः चार विषय हैं–श्रृंगार, षड्ऋतु वर्णन, राम कथा और राम भक्ति। इन चारों में कविवर सेनापति की प्रतिभा पूर्ण उत्कर्ष के साथ प्रस्फुटित हुई है।

2.1.5 काव्यगत विशेषताएं :

सेनापति की काव्यगत विशेषताएं इस प्रकार हैं :

1. शृंगार वर्णन : इनके शृंगार वर्णन में नायिकाओं के गुण–स्वभाव एवं चेष्टाओं को बड़ी सहजता के साथ प्रस्तुत किया गया है कि इस दृष्टि से रीतिकाव्य की रचना करने वाले गिने–चुने कवि ही इनके सामने टिक सकते हैं। उदाहरण के रूप में प्रस्तुत उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

लाल मनरंजन के मिलिबै कौं मंजन कै,
चौकी बैठी बार सुखवति बर नारी है।
अंजन, तमोर, मनि, कंचन, सिंगार बिन,
सोहत अकेली दहे सौभा कै सिंगारी है।
सेनापति सहज की तन की निकाई ताकी,
देखि कै दृगन जिय उपमा विचारी है।

इन्होंने संयोग वर्णन जितना सहजता से किया है। उतनी स्वाभाविकता से विरह का वर्णन किया है। विरह की सभी दशाओं का वर्णन इनकी रचना में प्रस्तुत है। विरह से व्याकुल नारी के मनः स्थिति का इतना मार्मिक चित्रण किया है कि सहृदय का मन सहानुभूति से द्रवित हो जाता है। जैसे–

जौतैं प्रान प्यारे परदेस को पधारे तौतैं,
बिरह ते भइ ऐसी तापित की गति है।
करि कर ऊपर कपोलहिं कमल नैंनी
सेनापति अनमनी बैठिये रहति है।
कागहिं उड़ावै, कौइ करै सगुनौती,
कोई बैठि अवधि के बासर गनति है।
पढ़ि पढ़ि पाती कोइ फेरि कै पढ़ति, कोइ
प्रीतम कौं चित्र मैं सरूप निरखति है।

2. ऋतु वर्णन : ऋतु वर्णन में सिद्धहस्त सेनापति ने अपनी रचनाओं में ऋतुओं का ऐसा स्वाभाविक वर्णन किया कि पाठक जिस ऋतु वर्णन को पढ़ता है वैसा ही अनुभव करने लगते हैं, और एक क्षण के लिए उसी अनुभूति में इतना डूब जाता है कि स्वयं को भूल जाता है। इनकी रचनाओं में प्रकृति के आलम्बन और उद्दीप्न दोनों ही रूप विद्यमान हैं। ग्रीष्म ऋतु का वर्णन तो देखते ही बनता है–

वृष कौं तरनि तेज सहसौ किरन करि,
ज्वालन के जाल विकराल बरसत है।
तचति धरनि, जग जरति झरनि, सीरी,
छाँह कौं पकरि पंथी–पंछी बिरमत है।
सेनापति नैंक दुपहरी के ढ़रत, होत,
धमका, विषय ज्यौं न पात सरकत है।

डॉ0 भगीरथ मिश्र सेनापति की अप्रतिम सफलता के लिए उनके ऋतु वर्णन को मानते हैं। इनका ऋतु वर्णन ब्रजभाषा की अद्वितीय बानगी ही नहीं देता बल्कि विशद बिम्ब भी प्रस्तुत करता है। वर्षा ऋतु के संदर्भ में एक छंद द्रष्टव्य है –

सेनापति उनए नए जलद सावन के,
चारि हूँ दिसान घुमरत भरे तोइ कै।।

सोभा सरसाने न बखाने जात काहू भांति,
आनै है पहार मानौं काजर के दोइ के।।

3. भक्ति भावना : सेनापति की गणना रामकाव्य परम्परा में की जाती है। तुलसीदास की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए सेनापति राम के शील, सौन्दर्य और शक्ति को अनेक प्रकार से व्यक्त करते हुए भक्त कवियों जैसी राम के प्रति अपनी प्रबल आस्था को प्रकट किया है। जैसे–

व्यापी देश–देस बिस्व कीरति जज्यारी जाकी,
सीतै संग लीने जामैं केवल सुधाई है।
सुर नर मुनि जाके दरस कौ तरसत,
राखत न खर तेजै कला की निकाई है।

हिन्दी राम काव्य में वे तुलसी, केशव और मैथिलीशरण के सबसे बड़े कवि के रूप में देखे जा सकते हैं। इनकी भक्ति भावना में उदारता का भाव भी दृष्टिगोचर होता है क्योंकि इन्होंने राम के अतिरिक्त कृष्ण, शिव, गंगा, काशी इत्यादि को अपने भक्ति भाव का आधार बनाया है।

4. शिल्प पक्ष : शिल्प पक्ष की दृष्टि से सेनापति काव्य में रीतिकालीन कवियों की भाँति ब्रजभाषा और अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है परन्तु इनकी यह विलक्षणता है कि इन्होंने कविता में प्रसाद गुण के साथ ओज गुण का भी प्रयोग किया है। श्लेष अलंकार का सफल प्रयोग करने हेतु इन्हें श्लेष सम्राट भी कहा जाता है। श्लेष के प्रयोग से इनकी वाणी का वैदग्ध्य आह्लदक होकर आया है।

2.1.6 सप्रसंग व्याख्या :

1. मानुष हौं तो........................कदंब की डारन।

शब्दार्थ : मँझारन–बीच में। पाहन–पत्थर। पुरन्दर–इन्द्र। खग–पक्षी।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश भक्तिकाल की कृष्ण भक्ति शाखा के प्रसिद्ध कवि रसखान द्वारा रचित है। प्रस्तुत पद में रसखान हर योनि में गोकुल गाँव में जी जन्म लेने की कामना कर रहे हैं।

व्याख्या : रसखान लिखते हैं कि वे हर योनि में जन्म लेने के लिए तैयार हैं – मनुष्य, पशु, शिला, पक्षी कुछ भी बनने को तैयार हैं किन्तु उनकी इच्छा एक ही है कि उन्हें ब्रजवास मिले, ऐसे व्यक्तियों अथवा वस्तुओं का संसर्ग हो जिनसे कृष्ण का लगाव रहा हो। वह प्रेमी धन्य है जिनके लिए प्रिय को प्रिय लगने वाली वस्तु भी प्राणाधार हो सकती है। कृष्ण की लकुटी और कामरिया, नंद की गायें अथवा उनके वंशजात, ब्रज के वन–बाग और तड़ाग तथा करील की कुंजें भी रसखान की आत्मा को तृप्ति और तोष प्रदान करने में पूर्णतः समर्थ हो। इस प्रकार ब्रज का ग्वाला, गाय और पक्षी बनने में कृष्ण–संसर्ग की कामना अंतर्निहित है।

विशेष :
1. रसखान की श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति भावना का पता चलता है।
2. बसौ ब्रज, गोकुल गाँव में अनुप्रास अलंकार है।

2. या लकुटी..ऊपर वारौ।।

शब्दार्थ : तड़ाग–तलाब, सरोवर। कलधौत–सोना, चाँदी।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ भक्तिकाल की कृष्ण भक्ति शाखा के प्रसिद्ध कवि रसखान द्वारा रचित है। प्रस्तुत पद में रसखान कृष्ण भक्ति के लिए संसार के सभी सुख, धन–दौलत, बादशाही ठाठ को ठुकराने की बात कह रहे है।

व्याख्या : रसखान कहते हैं कि वह बादशाही ठाठ की चाहत नहीं रखते उन्हें भले कोई आठों सिद्धियाँ और नौ निधियों का सुख दे परन्तु वह नन्द की गाय चरा कर अधिक सुख प्राप्त करेंगे उन्हें इस धन–दौलत, बादशाही ठाठ इत्यादि की कोई आवश्यकता नहीं है ये वस्तुएँ उन्हें वह सुख नहीं दे सकती जो सुख उन्हें ब्रज में रहने से, वहाँ के बाग, तलाब इत्यादि देखने से प्राप्त होगा। वह यह सब सांसारिक वस्तुएँ (सोना, चांदी इत्यादि) ब्रज गाँव पर न्यौछावर करते हैं।

विशेष : 1. रसखान का धन–दौलत के प्रति उदासीन भाव दिखाया गया है।
2. रसखान की श्री कृष्ण के प्रति भक्ति भावना का पता चलता है।

3. मोरपखा सिर..अधरा न धरौंगी।

शब्दार्थ : गरें–गले में। पितंबर–पीताम्बर अर्थात् पीला कपड़ा। अधरान–ओठों पर। अधरा–अधरए ओंठ। गंजु–तुलसी।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश भक्तिकाल की कृष्णभक्ति शाखा के प्रसिद्ध कवि रसखान द्वारा रचित है। प्रस्तुत पद में रसखान श्री कृष्ण की मोहिनी मूर्त का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या : रसखान कहते हैं कि श्री कृष्ण ने मोरपंख का मुकुट सिर पर पहना हुआ है और तुलसी की माला गले में पहन कर पीले पीताम्बर ओड़ कर और मुरली को अपने अधरों पर रख कर गोकुल की गवालिनों के संग घूम रहे हैं। अपनी मुरली से वह गवालिनों को वशीभूत कर रहे हैं। रसखान भी श्रीकृष्ण की इस मधुर मुरली के वशीभूत हो कर झूमना चाहते हैं।

विशेष : 1. श्रीकृष्ण की मोहिनी मूर्त का वर्णन है।
2. रसखान यहाँ स्वयं को श्रीकृष्ण की प्रेमिका के रूप में मान रहे हैं।
3. श्रीकृष्ण की मनोहर, सुरीली मुरली का वर्णन है जिससे कोई भी वशीभूत हो सकता है।

4. जौतैं प्रानप्यारे.....................................सरूप निरखति है।

शब्दार्थ : जौतैं – जब से। तापित – जलता हुआ, दुःखी। कर – हाथ। कपोलहिं – गाल। कागहिं – काग, कौआ। अवधि – समय। पाती – पत्र।

प्रसंग : प्रस्तुत काव्य पंक्तियां सेनापति के काव्य में ली गई। इन पंक्तियों में कवि ने विरह वर्णन किया है।

व्याख्या : जब से नायिका के प्रानप्यारे पति परदेस को गए हैं तब से नायिका विरह के ताप में तप रही है। कमल नैनों वाली नायिका ने अपने गालों पर हाथ रखकर सारा दिन उदास बैठी रहती है। कभी काग को उड़ाती है और कभी नायक के आने के दिनों की गणना करती रहती है। नायक द्वारा भेजे गए पत्र को बार–बार पढ़ती और कभी अपने प्रियतम प्यारे के चित्र में उसके स्वरूप को निहारती रहती है। अर्थात् नायिका दिन–रात अपने नायक के वियोग में जल रही है।

विशेष : विरह का सहज और स्वाभाविक वर्णन किया है।

5. बरन बरन तरु..रितुराज कहियत है।

शब्दार्थ : बरन–बरन – तरह–तरह के। मधुप – भंवरा। पहुपन – फूल। सुगंध – खूशबू। रितुराज – बसंत ऋतु।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश में सेनापति ने बसंत ऋतु का सुन्दर वर्णन किया है।

व्याख्या : सेनापति बसंत ऋतु का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि बाग में तरह–तरह के पेड़–पौधे, अलग–अलग रंगों के लहरा रहे हैं। कोयल और भंवरों के गीतों का गुंजार हो रहा है। भंवरे फूलों

की सुगंध को चखने के लिए उसके आस–पास मंडरा रहे हैं। सेनापति कहते हैं कि बसंत ऋतु के आने पर चारों तरह आनन्द ही आनन्द फैल जाता है।

विशेष : बसंत ऋतु का सहज और सुन्दर वर्णन किया है।

2.1.7 लघु प्रश्नोत्तर :

प्र.1. रसखान किस काल के कवि हैं?

उत्तर : रसखान भक्तिकाल की कृष्ण भक्ति शाखा के प्रसिद्ध कवि है।

प्र.2. रसखान की रचनाओं के नाम लिखें?

उत्तर : 1. प्रेमवाटिका 2. सुजान रसखान

प्र.3. रसखान की भक्ति भावना का परिचय दें।

उत्तर : रसखान की भक्ति भावना सूरदास के समान है। ये भी सगुण भक्ति के उपासक थे और श्रीकृष्ण को ही इष्ट रूप में पूजते थे।

प्र.4. रसखान के काव्य की चार विशेषताएँ लिखिए?

उत्तर : 1. भक्ति भावना 2. प्रेम वर्णन 3. सौन्दर्य विधान 4. शिल्प पक्ष

प्र.5. रसखान के शिल्प पक्ष पर प्रकाश डालिए?

उत्तर : रसखान के काव्य में अलंकारों–छन्दों इत्यादि का प्रयोग बहुत कम हुआ है परन्तु फिर भी हमें यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा इत्यादि के उदाहरण मिलते हैं।

2.1.8 लघु प्रश्नोत्तर :

प्र.1. सेनापति की भक्ति भावना पर टिप्पणी करें।

उत्तर : सेनापति ने राम की भक्ति की है। इनकी भक्ति भावना उदार है क्योंकि इन्होंने राम के अतिरिक्त कृष्ण, शिव और गंगा की भी आराधना की है।

प्र.2. सेनापति का वियोग वर्णन कैसा है?

उत्तर : इनका वियोग वर्णन अनुभूतिपरक है, सहज स्वाभाविक है। पाठक विरह जलति नायिका के साथ सहानुभूति में द्रवित होकर स्वयं को भूल जाता है।

प्र.3. सेनापति को श्लेष सम्राट क्यों कहा जाता है?

उत्तर : क्योंकि सेनापति ने अपने काव्य में श्लेष अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है। इसके प्रयोग के परिणामस्वरूप कविता आनन्द की प्राप्ति होती है।

प्र.4. सेनापति काव्य की भाषा कौन सी है?

उत्तर : सेनापति ने रीतिकालीन कवियों की भांति ही ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग किया है।

प्र.5. सेनापति काव्यगत विशेषताएं लिखें।

उत्तर : श्रृंगार वर्णन, ऋतु वर्णन, भक्ति भावना, श्लेष का प्रयोग।

2.1.9 सहायक पुस्तकें :

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास युग और प्रवृत्तियां – डॉ0 शिवकुमार शर्मा
3. रसखान रचनावली – विद्यानिवास मिश्रा

4. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 नगेन्द्र
5. हिन्दी साहित्य कोश–1 – डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा (सम्पा0)

2.1.10 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. रसखान का प्रेम वर्णन कीजिए?
2. रसखान के सौन्दर्य विधान पर प्रकाश डालिए?
3. सेनापति की काव्यगत विशेषताएं लिखें।
4. सेनापति के ऋतुवर्णन पर नोट लिखें।
5. सेनापति की भक्ति भावना स्पष्ट कीजिए।

पाठ संख्या : 2.2 **लेखिका : डॉ0 कुलदीप कौर**

बिहारी, भूषण

इकाई की रूपरेखा :

2.2.0 उद्देश्य
2.2.1 प्रस्तावना
2.2.2 बिहारी का व्यक्तित्व और कृतित्व
2.2.3 काव्यगत विशेषताएं
2.2.4 भूषण का व्यक्तित्व और कृतित्व
2.2.5 काव्यगत विशेषताएं
2.2.6 सप्रसंग व्याख्या
2.2.7 लघु प्रश्नोत्तर
2.2.8 सहायक पुस्तकें
2.2.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.2.0 उद्देश्य :

आप इस पाठ के अन्तर्गत रीतिकालीन श्रृंगारिक कवि बिहारी से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के पश्चात्

* बिहारी के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
* बिहारी की काव्यगत विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
* काव्य की सप्रसंग व्याख्या कर सकेंगे।

2.2.1 प्रस्तावना :

बिहारी रीतिकाल के प्रमुख श्रृंगारिक कवि और विशिष्ट मुक्तककार हैं। इन्होंने 'बिहारी सतसई' में तत्कालीन समाज की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और नैतिक परिस्थितियों को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। इनकी अद्वितीय वाग्विदग्धता और अनुभाव कौशल ने हिन्दी साहित्य में महाकवि होने का सम्मान दिलाया है। आचार्य शुक्ल ने इनके एक–एक दोहे को एक–एक रत्न माना है।

2.2.2 बिहारी का व्यक्तित्व और कृतित्व :

व्यक्तित्व :

सामंती युग के वैभव और विलास को अभिव्यक्त करने वाले कवि बिहारी का जन्म संवत् 1652 में ग्वालियर में एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में हुआ। कुछ विद्वान् मथुरा और कुछ वसुआ गोविंदपुर को भी बिहारी का जन्म स्थान मानते हैं। मथुरा में इनकी ससुराल थी। इनके पिता का नाम केशव राय था। अधिकतर विद्वानों का मानना है कि केशवराय आचार्य केशवदास ही हैं। बिहारी माथुर चौबे थे। इनके एक भाई और बहिन का होना भी बताया जाता है। इनकी शिक्षा–दीक्षा महन्त नरहरिदास की देख–रेख में हुई। अपनी बुद्धि और प्रतिभा के बल पर शीघ्र ही काव्य शास्त्र पर अधिकार कर लिया। इन्होंने साहित्य के साथ–साथ संगीत का भी अध्ययन किया।

मुगल बादशाह शाहजहाँ से भेंट उपरान्त इन्होंने फारसी शायरी का भी अध्ययन किया। बिहारी की काव्य–निपुणता पर मुग्ध हो कर राजाओं ने वार्षिक वृत्ति बांध दी। एक बार बिहारी जयपुर के राजा जयसिंह के दरबार में पहुँचे तो इन्होंने नवविवाहिता पत्नी के प्रेमजाल में उलझे राजा को प्रस्तुत दोहा लिखकर उसके राजकीय उत्तरदायित्व से परिचित करवाया–

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सो बिंध्यों, आगै कौन हवाल।।

राजा अपनी मोह निद्रा से जागृत हुआ और राज्य के प्रशासन की ओर ध्यान दिया। राजा ने प्रसन्न होकर बिहारी को अपना राजकवि नियुक्त किया और एक–एक दोहे पर सोने की मोहर देने का वचन दिया। वहीं पर इन्होंने सतसई की रचना की। संवत् 1720 के आस–पास इनकी मृत्यु हुई।

कृतित्व :

बिहारी की एकमात्र रचना 'सतसई' है। इसमें 713 दोहे संकलित हैं। श्रृंगार ग्रंथों में जितना सम्मान इस रचना को प्राप्त हुआ है उतना किसी को नहीं मिला। बिहारी को एक ही ग्रंथ उनकी कीर्ति का आधार है। आचार्य रामचन्द्रशुक्ल को इस संबंध में कहना, ''यह बात साहित्य क्षेत्र के इस तथ्य की घोषणा कर रहा है कि किसी कवि का यश उसकी रचनाओं के परिमाण के हिसाब से नहीं होता, गुण के हिसाब से होता है।'' सतसई में बिहारी ने अलंकार, रस, भाव, नायिका भेद, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति आदि गुण का ध्यान रखकर सुन्दर दोहे रचे हैं।

रीतिबद्ध कवि बिहारी ने हमारे समक्ष सौन्दर्य और प्रेम–क्रीड़ा की मनोरम झांकियां प्रस्तुत की हैं। इन्होंने संक्षिप्त वर्णन के द्वारा किसी वस्तु, व्यक्ति या भाव का जगमगाता रूप प्रस्तुत किया है। सतसई के सम्बन्ध में किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है–

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर।।

2.2.3 काव्यगत विशेषताएं :

जीवन का पैनी दृष्टि से निरीक्षण करने वाले कवि बिहारी की काव्यगत विशेषताएं इस प्रकार हैं –

1. श्रृंगारिकता :

रीतिकाल वैभव और विलास का युग माना जाता है परिणामतः उस युग की मुख्य विशेषता प्रेम और श्रृंगार ही रही है। बिहारी को हिन्दी के सर्वप्रिय और सर्वश्रेष्ठ श्रृंगारी कवि के रूप में ख्याति मिली है। इन्होंने श्रृंगार रस के दोनों पक्षों का सुन्दर वर्णन किया परन्तु सफलता इन्हें संयोग वर्णन में मिली है। नायक–नायिका के मिलन, हास्य–व्यंग्य, केलि–क्रीड़ाओं, मान–अभिसार रति आदि संयोग के सभी प्रसंगों का स्वाभाविक और सरस चित्रण किया है। जैसे–

कहत, नटत, रीझत, खिझत मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैनन ही सों बात।।

नायिका के कानों में पहने जाने वाले आभूषण का वर्णन देखिए –

भीनैं पट मैं झुलमुली भलकति ओप अपार।
सुरतरू की मनु सिंधु मैं लसति अपल्लव डार।।

एक अन्य उदाहरण में बिहारी की अनुभाव योजना में कल्पना और मधुरता की झलक देखते ही बनती है–

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाई।
सौंह करै, भौंहिन हँसै, दैन कभै, नटि जाइ।।

डॉ0 नगेन्द्र बिहारी को संयोग चित्रण के सिद्धहस्त कवि मानते हैं उनके अनुसार, ''शारीरिक चेष्टाओं तथा विभिन्न कार्यकलाप का चित्रण बिहारी इस प्रकार करते हैं कि यह मानस पटल पर सदा के लिए अमिट हो जाता है। उन्होंने केवल भावुकता–वश सौन्दर्य चित्रण ही नहीं किया वरन् जीवन के प्रौढ़ अनुभवों का उद्घाटन भी किया है।

बिहारी ने वियोग वर्णन भी किया है किन्तु जितनी सफलता इन्हें संयोग वर्णन में मिली उतनी वियोग में नहीं। इनका वियोग वर्णन मात्र चमत्कार प्रदर्शन है, उसमें गम्भीरता का अभाव है, अनुभव का अभाव है। नायिका की विरहाग्नि, विरह क्षीणता का वर्णन करते समय बिहारी उसकी सीमा का उल्लंघन करते हैं और कविता मात्र शब्दों का खेल बन कर रह जाती है। जैसे इन दोहों में –

इति आवति चलि जात उत, चली छ सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासन साथ।।

अथवा

करी विरह ऐसी तऊ गैल न छाडुत नीच।
दीनै हूँ चसमा चखनु–चाहै लहै न मीच।।

बिहारी के विरह वर्णन में ह्रदय को छू लेने की क्षमता नहीं है अनुभूति की सच्चाई कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती इसलिए उनकी कविता शृंगारिक है और प्रेम की उच्च भाव भूमि तक पहुँच नहीं पाती।

2. भक्ति और नीति :

बिहारी सतसई की प्रमुख विशेषता शृंगार वर्णन है किन्तु भक्ति और नीति का भी सुन्दर वर्णन हुआ है। बिहारी ने राधा–कृष्ण लौकिक प्रेम के विविध पक्षों का सजीव वर्णन किया है। बिहारी सतसई के सबसे पहले दोहे में राधा को सौन्दर्य और पापों का नाश करने वाली शक्ति के रूप में चित्रित किया–

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झांई परे, स्याम हरित दुति होय।।

बिहारी किसी विशेष भक्ति सम्प्रदाय के अनुयायी नहीं हैं, कहीं राम की महिमा गाई है तो कहीं कृष्ण के प्रति आस्था प्रकट की है। नाम स्मरण पर कवि ने विशेष बल दिया है–

मोर मुकटि कटि का छनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानक मो मन सदा, बसौ बिहारी लाल।।

बिहारी ने निजी जीवन के अनुभवों का निचोड़ भी कुछ पदों में किया है कुछ नीतिपरक अत्यंत प्रभावशाली है। सज्जन प्रशंसा, गुणवान की महिमा, दुर्जन की निंदा, दानी और सूम पर उक्तियां, मानव स्वभाव की व्याख्या इनके नीतिपरक दोहों में देखी जा सकती है–

कनक कनक ते सौगुनी, मादकता अधिकाय।
वह खाए बौराए नर, यह पाए बौराय।।
दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन हिए, दई नई यह रीति।।
सोहत संगु समान सौं, यहै कहै सबु लोगु।
पान–पीक ओंठन बनै, काजर नैननु जोगु।।

3. प्रकृति चित्रण :

बिहारी सतसई में प्राकृतिक वर्णन उद्दीप्न रूप में, उपदेशिका के रूप में और कहीं–कहीं स्वतंत्र रूप में उपलब्ध होता है। इनका षडऋतु वर्णन प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन है। ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए लिखते हैं–

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन तन मोह।
निरख दुपहरी जेठ की, छांहौ चाहति छांह।।

मानवीकरण और नाद सौन्दर्य का उदाहरण देखिए –

रूनित भृंग घंटावली, झरत दान मधुनीर।
मंद–मंद आवत चलयौ, कुंजर कुंज समीर।।

4. अलंकार योजना :

बिहारी अलंकार वादी कवि नहीं थे उन्होंने अपनी काव्य रचना में अलंकारों का प्रयोग सहज रूप में किया है। उन्होंने अलंकारों का प्रयोग भावों को निखारने और संवारने के लिए किया है। षब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों पर बल दिया है। जिससे उनके दोहे अत्यंत सौन्दर्यषाली बने हैं। उपमा, रूपक, यमक, विरोधाभास तथा असंगति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। यमक का उदाहरण देखिए –

तौ पर बारौं उरबसी, सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन के उरबसो, हवै उरबसी समान।।

5. उक्ति वैचित्रय :

बिहारी ने शब्दों का ऐसा सुन्दर संयोजन किया है कि उक्ति में चमत्कार उत्पन्न हो गया है। इस दृष्टि से कवि बिहारी रीतिकालीन कवियों में सर्वाधिक सफल कवि कहे जा सकते हैं। नपे–तुले शब्दों में अपनी बात कहने में बिहारी सिद्धहस्त हैं। इनके दोहों को 'गागर में सागर' भरने का विशेषण दिया जाता है। एक उदाहरण देखिए–

पीठ दिए ही नेकु मुरि, कर घूंघट पट टारि।
भरि गुलाल की मूठि सों गई मूठि सी मारि।।

6. छंद :

बिहारी ने केवल दोहा छंद में अपनी कविता लिखी है। दोहा छंद की यह विलक्षणता होती है कि इसमें गागर में सागर भरना पड़ता है और बिहारी इस सफल हुए उन्होंने इस छंद में भावों को बड़े ही कलात्मक ढंग से पिरोया है। छंदशास्त्र की दृष्टि से इनके दोहे दोष रहित हैं।

7. भाषा शैली :

बिहारी ने सतसई की रचना चलती ब्रजभाषा में की है। इनका शब्द विधान ओर वाक्य विन्यास पर्याप्त सुव्यवस्थित है। प्रांजलता, मधुरता, सरसता, संगीतात्मकता तथा गत्यात्मकता इनकी भाषा की विशेषताएं हैं। इन्हें भाषा का पंडित कहा जाता है। इनकी भाषा में बुंदेलखण्डी, खड़ी बोली, अरबी, फारसी के शब्द की प्रयुक्त हुए हैं किन्तु कहीं भी भाषा की स्वाभाविकता नष्ट नहीं हुई।

बिहारी ने मुक्तक शैली में काव्य रचना की है आचार्य शुक्ल के अनुसार ''मुक्तक में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी के दोहों में अपने चरमोत्कर्ष को पहुंचा है इसमें संदेह नहीं।'' शुक्ल जी तो इनके दोहों को रस के ऐसे छींटे मानते हैं जो सहृदय पाठक को रसमगन करने में पूर्णतया समर्थ हैं।

निष्कर्षतः बिहारी रीतिकालीन कवियों में सर्वोपरि कवि हैं जिन्होंने अपनी रचना में अनेक स्वादों को भरा है।

2.2.4 भूषण का व्यक्तित्व और कृतित्व :

व्यक्तित्व :

वीररस के प्रख्यात कवि भूषण का जन्म संवत् 1670 में तिकवॉंपुर में हुआ। इन्होंने 'शिवराजभूषण' में अपना परिचय देते हुए लिखा है कि कान्यकुबज ब्राह्मण थे। इनका गोज कश्यप था। ये रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र थे। चित्रकूटपति हृदयराम के पुत्र राजा सोलंकी ने इन्हें 'भूषण' की उपाधि से विभूषित किया था। भूषण बहुत सारे

आश्रयदाताओं के पास रहे परन्तु अधिकतर समय इन्होंने शिवाजी और छत्रसाल पास बिताया। इनका देहान्त सं. 1772 में माना जाता है।

कृतित्व :

कवि भूषण की 6 रचनाएं मानी जाती हैं। शिवराज भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक, भूषण उल्लास, दूषण उल्लास, भूषण हज़ारा। इनमें से प्रथम तीन रचनाएं ही उपलब्ध होती हैं। शिवराज भूषण अलंकार ग्रंथ हैं। शिवा बावनी तथा छत्रसाल दशक वीर रस संबंधी छोटे–छोटे ग्रंथ हैं जिनमें शिवाजी और छत्रसाल के वीरतापूर्ण कार्यों का गौरवमय गान है।

'शिवराज भूषण' अलंकार निरूपण का ग्रंथ है। इस ग्रंथ में अलंकारों के लक्षण देकर उदाहरण में शिवाजी की वीरता और यश पर कवित्त और सवैये लिखे हैं। रीतिकाल के अन्य कवियों की भांति इन्होंने नायिका भेद और नखशिख वर्णन नहीं किया। यही कारण है भूषण अपने समकालीन कवियों से सर्वथा भिन्न हैं। वे कवि और आचार्य दोनों हैं। आचार्यत्व की दृष्टि से इन्हें अधिक सफलता नहीं मिली क्योंकि अलंकार शास्त्र की दृष्टि से अनेक त्रुटियां हैं। उदाहरण लक्षणों के अनुसार नहीं है।

2.4.5 काव्यगत विशेषताएं :

1. वीर रस :

भूषण ने तत्कालीन दरबारी साहित्य की प्रचलित वर्णन पद्धति का विरोध करते हुए वीर रस से युक्त रचनाओं की रचना की। शिवाजी और छत्रसाल इनके आदर्श नायक थे। शिवाजी की वीरता का वर्णन तथा युद्ध वर्णन में वीररस साकार हो उठा है। काव्य की प्रत्येक पंक्ति ओज और दर्द से परिपूर्ण है। इनकी रचनाओं को पढ़कर रक्त की गति बढ़ जाती है। शिवाजी की वीरता का एक उदाहरण देखिए –

दावा द्रुम दंड पर, चीता मृग झुंड पर
भूषण वितुंड पर जैसे मृगराज है
तेज तम अंश पर, कान्ह जिमि कंस पर।
त्यों मलेच्छ बंस पर, सेर सिवराज है।।

2. युद्ध वर्णन :

भूषण ने युद्धों का वर्णन बड़े ही सजीव ढंग से किया। युद्ध करने तथा स्वयं को बलिदान करने की भावना से परिपूर्ण सेनाओं की युद्ध वीरता, कायरों की भयभीत मुद्राएं इत्यादि के ऐसे प्रभावशाली बिम्ब खींचे हैं युद्ध का मैदान आंखों के समक्ष प्रस्तुत हो जाता है जैसे–

निकसत म्यान तें मयूखें प्रलै भानु कीसी,
फारें तम तोम से गयंदन के जाल को
लागति कंठ बैरनि के नागिन सी,
रूद्रहि रिझावै दै दै मूंडन की माल को
लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,
कहां लो बखान करौं तेरी करवाल को।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिका सी किलकि कलेउ देती काल को।

3. आश्रयदाता की स्तुति :

अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा करना रीतिकालीन कवियों के मूल प्रवृत्ति हैं क्योंकि रीतिकाल के कवि ने राज दरबारों में रहकर ही काव्य रचना की, यहीं उनकी रोजी–रोटी चलती थी तो स्वाभाविक है कवियों की कविता

का केन्द्र बिन्दु राजदरबार की सीमा में ही रहता था। भूषण भी इसके अपवाद नहीं परन्तु भूषण की कविता में शिवाजी और छत्रसाल की प्रशंसा अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है। वे सच्चे अर्थों में शूरवीर और आत्माभिमानी थे। भूषण ने धन या सम्मान के मोह में कविता नहीं लिखी। अपने चरित नायकों के गुणों का वर्णन करते हुए कहीं बनावटी नहीं लगते। वह अपने नायकों को राम और कृष्ण के समकक्ष रखते हुए लिखते हैं –

दशरथ जू के राम भै, वसुदेव के गोपाल
सोई प्रकट साहि कै, श्री शिवराज भुआल।

भूषण ने अपने काव्य में इतिहास की पूर्णतया रक्षा की है। अपनी तरफ से कुछ भी जोड़ा नहीं गया।

4. अलंकार :

भूषण ने शिवाजी और छत्रसाल का चरित्र चित्रण करते हुए अलंकारों का स्वाभाविक रूप में वर्णन किया है। अपनी अभिव्यक्ति को सशक्त और प्रभावशाली बनाने के लिए अलंकारों का प्रयोग किया है। अलंकार शास्त्र की दृष्टि से अलंकार योजना में अनेक दोष हैं। अनुप्रास और यमक के प्रयोग में कवि का कौशल सराहनीय है। अनुप्रास का उदाहरण देखिए –

भुज भुजगेस की बैसंगिनी भुजंगिनी सी,
खोदि खोदि खाती दीह दारून दलन के।

इनके अलंकार काव्य सौन्दर्य के दिगुना करते हैं। कहीं–कहीं एक ही छंद में कई–कई अलंकारों का प्रयोग हुआ है। अनुप्रास और यमक के अतिरिक्त उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, व्याजस्तुति, रूपक, उपमा आदि अलंकारों का बड़ा सुन्दर विधान किया है।

4. भाषा शैली :

भूषण ने रीतिकाल में प्रचलित ब्रज भाषा में ही काव्य की रचना की। इन्होंने विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग मुसलमानों के ही प्रसंग में किया है। इनकी भाषा सशक्त, भाव पूर्ण, सुव्यवस्थित और विषयानुसार है। मुहावरों और लोकोक्तियों का सफल प्रयोग किया है जिससे भाषा प्रवाहपूर्ण बनी। विवेचनात्मक शैली में रचित भूषण का काव्य मानव ह्रदय में उमंग भरने में सफल रहा है।

उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात् हम कह सकते हैं कि भूषण रीतिकाल में वीररस की धारा को प्रवाहित करने वाले एक युग प्रर्वतक कवि हैं।

2.2.6 सप्रसंग व्याख्या :

दोहा

1. मेरी भव बाधा..............त्यौं त्यौं उज्जलु होइ।।

शब्दार्थ : भव–बाधा–सांसारिक बाधाएं। नागरि–चतुर। झांई–परछाई। हरित दुति–हरे रंग से युक्त। अनुरागी–प्रेमी। बूडै–डूबता। उज्जलु–सफेद।

प्रसंग : प्रस्तुत दोहे कविवर बिहारी के सतसई में से लिया गया है। प्रथम दोहा सतसई का पहला दोहा है जिसे मंगलाचरण के रूप में समझा जा सकता है। कवि ने प्राचीन कवि परम्परा के अनुसार अपने ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए श्रीराधिका की स्तुति की है। और दूसरे में भगवान कृष्ण के प्रति अपनी अन्नय भक्ति के भाव को व्यक्त किया है।

व्याख्या: प्रथम दोहे के तीन प्रकार के अर्थ किए जा सकते हैं–

1. जिस प्रकार चतुर राधिका के शरीर की परछाईं पड़ने से श्याम वर्ण वाले श्री कृष्ण हरे रंग की आभा वाले हो जाते हैं, वही राधिका मेरी सांसारिक विघ्न बाधाओं आदि का नाश करे।

2. जिस प्रकार राधिका के शरीर की झलक (नेत्रों में) पड़ने से श्रीकृष्ण प्रसन्न चित्त हो जाते हैं अर्थात् आनन्दविभोर हो जाते हैं, वही राधिका मेरी सांसारिक बाधाओं का नाश करे।
3. जिस प्रकार चतुर राधिका के रूप का ध्यान पड़ने से (हृदय में) दुःख दारिद्रय, तेजहीन हो जाता है। वही राधिका मेरी सांसारिक रूकावटों को दूर करे।

दूसरे दोहे में श्रीकृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति का परिचय देते हुए कवि कहता है कि इस प्रेमी हृदय की गति को कोई नहीं समझ सकता। मेरा यह मन जैसे–जैसे श्रीकृष्ण के प्रति आसक्त होता जाता है अर्थात् श्री कृष्ण के प्रेम में जितना डूबता जाता है उतना ही अधिक पावन होता जाता है।

विशेष :

1. कवि दोनों दोहों में राधा और कृष्ण के प्रति अपने अनन्य भक्ति भाव को व्यक्त किया है।
2. अलंकार श्लेष – झांई, स्याम तथा हरित दुति में
   श्लेष – अनुरागी, स्याम रंग और उज्जलु में

2. तंत्री नाद..सब अंग।

प्रसंग : प्रस्तुत दोहे में बिहारी कविता संगीत कला तथा रति कला को जीवन की सार्थकता के लिए महत्त्वपूर्ण बताया है।

व्याख्या: कवि कहता है कि जिन व्यक्तियों ने वीणा आदि वाद्य यंत्रों के मधुर सुरों, काव्यकला, इस युक्त गीतों और रति क्रीड़ा के सुख को पुरी तरह नहीं भोगा, उनका जीवन निष्फल हो गया। इसके विपरीत जो इन विभिन्न रसों में पूर्णतः डूब गए उन्होंने जीवन के सच्चे सुख की प्राप्ति कर ली है।

विशेष :

1. कवि ने युगीन परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है और ललित कलाओं को जीवन के सुख का कारण बताया है।
2. अलंकार : विरोधाभाग – 'अनबूड़े बूड़े में'
   अनुप्रास – सम्पूर्ण दोहे में

3. जपमाला..साँचे राँचे राम।

प्रसंग : प्रस्तुत दोहे में कवि ने भक्ति के बाह्याडम्बरों की भर्त्सना करते सच्चे मन से ईश्वर की उपासना करने पर बल दिया है।

व्याख्या : कवि कहता है कि माला के मनकों से ईश्वर नाम जपने, माथे पर तिलक लगाने आदि से एक भी काम सिद्ध नहीं होता। कच्चे मन का भक्त अगर ईश्वर की स्तुति करते समय भजन, कीर्तन तथा नर्तन करता है तो वह सब व्यर्थ है। भगवान तो उसी से प्रसन्न होते हैं जो सच्चे मन वाला होता है अर्थात् भगवान में अटूट श्रद्धा और विश्वास रखता है।

विशेष :

1. निष्काम भक्ति भावना का प्रतिपादन किया है।
2. अलंकारः अनुप्रास–सम्पूर्ण दोहे है।

4. साजि चतुरंग..यों हलत है।।

शब्दार्थ : चतुरंग–जिस सेना में हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल चारों अंग हों। बिहद–बेहद, अत्यधिक। नद–बड़ी नदी। गैवर–श्रेष्ठ हाथी। रलत है–वह चलता है। ऐल–समूह, सेना। फैल–फैलने से। खैलभैल–खलबली। सैल–पहाड़। उसलत है–स्थानभ्रष्ट हो जाते हैं। धूरि–उड़ी हुई धूल का समूह। धारा–थाल। पारावार–समुद्र।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश रीतिकालीन वीर रस के कवि भूषण द्वारा रचित हैं। प्रस्तुत पद में कवि शिवाजी के युद्ध का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या : शिवा जी के युद्धोत्साह का वर्णन करते हुए भूषण ने लिखा है कि शिवा जी अपनी चतुरंगिणी सेना सजाकर और घोड़े पर चढ़कर युद्ध क्षेत्र के लिए चले, वैसे ही बड़े–बड़े नगाड़ों का भयंकर नाद होने लगा, मतवाले हाथियों का मद बहने लगा, सारे संसार में गली–गली के अन्दर खलबली मच गई, हाथियों की ठेल–पेल से पर्वत उखड़ने लगे और सेना के चलते ही इतनी धूल उठी की ढँककर एक तारे की भाँति चमकने लगा तथा समुद्र इस तरह हिलने लगा जिस तरह एक बड़े थाल में पारा डाल दिया जाय तो वह हिलता हुआ दिखाई देता है।

विशेष :
1. सरजा सिवाजी, जंग जीतन, भूषन भनत, नदी नद, गैलगैल गजन, पर पारा पारावार में अनुप्रास अलंकार है।
2. वीर रस है।
3. शिवा जी की सेना एवं युद्धोत्साह का सशक्त वर्णन है।

5. वेद राखे विदित...राख्यो घर में।।

शब्दार्थ : रसना–जीभ। सुघर–सुंदर। रोटी–जीविका। गर–गला। मीड़ना–मसलना। कर–हाथ। तेग–तलवार।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश रीतिकालीन वीर रस के कवि भूषण द्वारा लिखित है। प्रस्तुत पंक्तियों में भूषण ने शिवाजी के धर्म पर आरूढ़ रहने वाले उन प्रबल भावों की व्यंजना की है, जिनमें शिवा जी धर्म–रक्षक वीर के रूप में चित्रित किया गया है।

व्याख्या : शिवा जी के धर्मवीर सम्बन्धी धार्मिक उत्साह एवं धर्मनिष्ठा का निरूपण करते हुए भूषण ने बताया है कि शिवा जी ने सुप्रसिद्ध वेद पुराणों की रक्षा की थी, राम नाम की रक्षा की थी, हिन्दुओं की चोटी सुरक्षित रखी थी, उनके कन्धे पर जनेऊ और गले में माला सुरक्षित रखी थी तथा अपनी तलवार के बल पर ही देवता, देव–मन्दिर एवं स्वधर्म की रक्षा की थी।

विशेष :
1. भूषण के इस धर्म–रक्षा सम्बन्धी विवरण में उनकी धार्मिक वीर भावना का पुनीत एवं प्रांजल रूप विद्यमान है।

6. भुज भुजगेस...खलन के।।

शब्दार्थ : भुजगेस–शेषनाग। बैसंगिनी–आयु भर साथ देने वाली। खेदि–खदेड़कर। खाना–डँसना। दीड–दीर्घ, बड़े। पाखर–लोहे की झूल। मीन–मछली। परवाह–प्रवाह, धारा। परछीने–परकटे। पर–शत्रु। छीने–निर्बल। बर–बल।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश रीतिकालीन वीर रस के कवि भूषण द्वारा रचित हैं। इस पद में भूषण महाराजा छत्रसाल के युद्ध कौशल का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या : भूषण लिखते हैं कि महाराज छत्रसाल की तलवार इतनी तीव्रता के साथ रण–क्षेत्र में चलती थी कि वह सर्पिणी के समान शत्रुओं के दल के दल खा जाती थी, हाथियों की लोहे की झूलों एवं जिरहबख्तरों में मछली की तरह पार हो जाती थी और उसने शत्रुओं को पंख कटे पक्षियों की भाँति काट–काट कर रणक्षेत्र में उनकी लाशों के ढेर लगा देती थी।

विशेष :
1. भुज–भुजगेस, दीड दारून दलन, पैंरि पार, ज्यों जलन में अनुप्रास अलंकार है।
2. खेति–खेति में पुनरुकितप्रकाश है।
3. युद्ध कौशल से परिपूर्ण वीर–भावना की अत्यन्त सजीव अभिव्यंजना हुई है।

2.2.7 लघु प्रश्नोत्तर :

1. क्या बिहारी रीति बद्ध कवि हैं?

उत्तर : बिहारी के काव्य में नायिका–भेद है जिस कारण उन्हें रीतिबद्ध कवि स्वीकार किया जाता है।

2. श्रृंगार वर्णन किसे कहते हैं?

उत्तर : जिसमें नायक–नायिका के नख से लेकर शिख तक का वर्णन हो और नायक–नायिका के हास्य–व्यंग्य, रीति–क्रीड़ाओं का वर्णन किया गया हो उसे श्रृंगार वर्णन कहते हैं।

3. बिहारी मुक्तककार है–टिप्पणी करें।

उत्तर : बिहारी द्वारा लिखित प्रत्येक दोहा अपने–आप में स्वतंत्र है और पूर्ण भाव देता है इसलिए बिहारी एक सफल मुक्तककार है।

4. बिहारी की भक्ति भावना पर दो शब्द लिखें।

उत्तर : बिहारी की भक्ति भावना में राधा–कृष्ण के विविध पक्षों का सजीव वर्णन देखने को मिलता है।

5. बिहारी काव्य की विशेषताएं लिखें।

उत्तर : बिहारी के काव्य की मुख्य विशेषता श्रृंगारिकता है। इसमें श्रृंगार के दोनों रूपों संयोग और वियोग का वर्णन है। कहीं–कहीं पर भक्ति–भावना के दर्शन भी होते हैं। बिहारी का काव्य मुक्तक काव्य है।

प्र.6. भूषण के किन्हीं चार ग्रंथों के नाम लिखो।

उत्तर : शिवराज भूषण, शिवाबावनी, छत्रसाल दशक, भूषण उल्लास।

प्र.7. भूषण की प्रमुख विशेषता पर टिप्पणी करें।

उत्तर : भूषण काव्य की मूलभूत प्रवृत्ति वीर रस वर्णन है। इन्होंने रीतिकालीन श्रृंगारिक प्रवृत्ति विरोध करते हुए शिवाजी और छत्रसाल जैसे महानायकों के वीरता पूर्ण कार्य का बहुत प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया।

प्र.8. भूषण का हिन्दी साहित्य के किस युग के साथ संबंध है?

उत्तर : भूषण का संबंध हिन्दी साहित्य के रीतिकाल के साथ है। इस युग में रचित साहित्य को दरबारी साहित्य भी कहा जाता है और इस युग की प्रमुख विशेषता श्रृंगार वर्णन और लक्षण ग्रंथों का निर्माण करना था।

प्र.9. भूषण की कोई चार काव्यगत विशेषताएं लिखें।

उत्तर : 1. वीररस का चित्रण 2. युद्धों का सजीव चित्रण
3. आश्रयदाताओं की प्रशंसा 4. राष्ट्रीय भावना।

प्र.10. भूषण काव्य में वीर रस के अतिरिक्त और किन रसों का वर्णन मिलता है?

उत्तर : रौद्र रस, भयानक रस, करुण रस, अद्‌भुत रस, हास्य रस।

2.2.8 सहायक पुस्तकें :

हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ0 नगेन्द्र
मध्ययुगीन काव्य साधना – डॉ0 रामचन्द्र तिवारी
हिन्दी साहित्य का इतिहास युग और प्रवृत्तियां – डॉ0 शिवकुमार मिश्रा

2.2.9 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. बिहारी के श्रृंगार वर्णन की सोदाहरण चर्चा कीजिए।
2. बिहारी की काव्यगत विशेषताएं लिखें।
3. बिहारी एक सफल मुक्तककार हैं–सिद्ध कीजिए।
4. भूषण के रीतिकालीन पद्धति का तिरस्कार किया है–सिद्ध कीजिए।
5. भूषण की काव्यगत विशेषताएं लिखें।
6. भूषण ने अपने काव्य में वीररस का चित्रण किया है–सिद्ध कीजिए।

पाठ संख्या : 2.3 **लेखिका : डॉ0 कुलदीप कौर**

घनानंद, गुरु गोबिन्द सिंह

इकाई की रूपरेखा :

2.3.0 उद्देश्य
2.3.1 प्रस्तावना
2.3.2 घनानन्द का व्यक्तित्व और कृतित्व
2.3.3 काव्यगत विशेषताएं
2.3.4 गुरु गोबिन्द सिंह का व्यक्तित्व और कृतित्व
2.3.5 काव्यगत विशेषताएं
2.3.6 सप्रसंग व्याख्या
2.3.7 लघु प्रश्नोत्तर
2.3.8 सहायक पुस्तकें
2.3.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.3.0 उद्देश्य :

आप इस पाठ के अन्तर्गत रीतिमुक्त कवि घनानन्द से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के पश्चात्

* घनानंद के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
* घनानंद की काव्यगत विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
* काव्य की सप्रसंग व्याख्या कर सकेंगे।

2.3.1 प्रस्तावना :

रीतिकालीन स्वच्छंद काव्यधारा के घनानंद प्रमुख हस्ताक्षर हैं रीतिबद्ध कवियों में जो स्थान बिहारी को प्राप्त है, रीतिमुक्त काव्यधारा में वही स्थान घनानंद को प्राप्त है। इस धारा की प्राय सभी विशेषताएं इनकी रचना में मिल जाती हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें साक्षात् रस मूर्ति और ब्रजभाषा काव्य के प्रधान स्तम्भों में एक माना है। घनानंद रीतिकाल के एक मात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने श्रृंगार रस के वियोग पक्ष का वर्णन हृदय से किया है और इनका प्रेम शारीरिक न होकर, उच्च भाव–भूमि पहुँच जाता है। इसलिए इन्हें 'प्रेम की पीर' का कवि भी कहा जाता है।

2.3.2 घनानन्द का व्यक्तित्व और कृतित्व :

व्यक्तित्व :

घनानंद का जन्म संवत् 1746 के लगभग हुआ था और संवत् 1796 के लगभग नादिरशाही आक्रमणों में इनकी मृत्यु मानी जाती है। हिन्दी घनानंद या आनंदधन नाम के अनेक कवि मिलते हैं जिनके व्यक्तित्व और कृतित्व को इतिहासकारों ने घुला मिला दिया है।

घनानंद मुगल बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले के मीर मुंशी थे। दरबार की एक वेश्या 'सुजान' पर आसक्त हो

गए और उससे प्रेम करने लगे। घनानंद बहुत अच्छा गाते थे। एक दिन बादशाह ने गाना सुनाने को कहा तो घनानंद ने इनकार कर दिया, परन्तु सुजान के कहने पर इन्होंने बादशाह की तरफ पीठ करके ऐसा गाना सुनाया कि सब मंत्र मुग्ध हो गए। बादशाह इनके गाने पर बहुत खुश भी हुआ और नाराज़ भी। बादशाह ने इन्हें दिल्ली से निकाल दिया। इन्होंने अपनी प्रेयसी सुजान को भी साथ चलने को कहा परन्तु वह न मानी। इस घटना ने घनानंद के कवि हृदय को चोट पहुँचायी और वैरागी होकर वृन्दावन चले गए और निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित होकर राधा–कृष्ण की भक्ति में लीन हो गए। जीवन भर सुजान को न भूल सके। अपनी कविता में राधा–कृष्ण के लिए इन्होंने सुजान शब्द का ही प्रयोग किया है।

कृतित्व :

घनानंद ने कुल 41 रचनाएं लिखीं जिनमें से सुजान सागर, विरह लीला को कसार, रस केलिवल्ली और कृपाकांड नामक ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं। इसके अतिरिक्त इनके फुटकर कवित्त में सवैयों के संग्रह डेढ़ सौ लेकर सवा सौ कवित्तों तक के मिलते हैं। कृष्ण भक्ति सम्बंधी इनका एक विशाल ग्रंथ छत्रपुर के राज पुस्तकालय में है।

घनानंद का कवि–व्यक्तित्व का संघटन उनकी कविता ने किया है। उन्होंने जो भोगा उसे ही कविता के रूप में शब्द बद्ध किया उनका कहना है–

लोग है लागि कवित्त बनावत, मोहि तौ मेरे कवित्त बनावत।

2.3.3 काव्यगत विशेषताएं :

घनानंद की काव्यगत विशेषताएं इस प्रकार हैं –

1. प्रेम और सौन्दर्य वर्णन :

घनानंद के काव्य का केन्द्र बिन्दु प्रेम, सौन्दर्य और शृंगार वर्णन है। रीतिबद्ध कविता में जहाँ भोग विलास और शारीरिक सुख का वर्णन है वहाँ घनानंद की कविता में त्याग, संयम एवं एकनिष्ठ प्रेम का वर्णन है। प्रेम की उदात्तता उसे लौकिकता से अलौकिकता की ओर उन्मुख कर देती है। निस्संदेह घनानंद चमत्कारी कवि न होकर हृदयवादी कवि थे। उनके प्रेम और सौन्दर्य वर्णन में बाहरी चेष्टाएं एवं हाव–भाव न होकर हृदय का सहज उल्लास है। घनानंद के प्रेम वर्णन में तन्मयता और प्रगाढ़ता को महत्व प्रदान किया गया है। वे लिखते हैं –

अति सुधो सनेह को मारग है जहाँ नेक सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचै चलै तजि आपनयौ झझकै कपटी जे निसाँक नहीं।
घनानंद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक ते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो कहौ मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।

2. संयोग वर्णन :

घनानंद शृंगार रस के कवि हैं। संयोग पक्ष की अपेक्षा इनकी वृत्ति वियोग पक्ष में अधिक रमी है। संयोग वर्णन के अन्तर्गत इन्होंने नायक–नायिका मिलन और उनकी रमनीय चेष्टाओं का वर्णन किया है। इनके संयोग वर्णन में शारीरिक सन्तुष्टि की अभिलाषा न होकर आत्म–संतुष्टि की भावना प्रमुख है। जैसे–

रूप–गुन–सागरि, नवेली नेह–नागरि तू,
रचना अनूपम बनाई कौन विधि है।
चलनि, चितौनि बंक भौंहनि चलन हैनि,
बोलनि रसाल मैन–मंत्र हू कौं सिधि है।

3. विप्रलम्भ शृंगार :

घनानंद मूलतः प्रेम की पीर के कवि हैं। आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि ये वियोग वर्णन प्रधान मुक्तक कवि हैं। प्रेम की पीर लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जवांदानी ऐसा दावा रखने वाला ब्रज भाषा का दूसरा कवि नहीं था। इनके प्रेम वर्णन में हृदय की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाएं अत्यंत मार्मिक रूप में चित्रित हुई हैं –

मोही मोही जनाय कै, अरे अमोही? जोहि।
सोही मोही सो कठिन, क्यों करि सोही तोहि।।

घनानंद के काव्य में विरह की दस अवस्थाओं का वर्णन हुआ है।

4. भक्ति भावना :

सुजान से बिछुड़ने पर घनानंद का प्रेम राधा–कृष्ण प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। वह निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित हो जाते है। वे अपने काव्य में प्रेम की लोकानुभूति को दिव्य प्रेम की अनुभूति के साथ जोड़ते हैं और यह मानते हैं कि इस भौतिक जगत् में जो भी प्रेम है वह उस आलौकिक प्रेम का एक 'कण' है।

प्रेम को महोदधि अपार हरि कै विचार,
वापुरो हहरि बार ही ते फिर आयो है।
ताही एक रस है विवस अवगाहै दोऊ,
नेही हरि–राधा, जिन्हें देखे सरसायो हैं।

5. अलंकार :

घनानंद के काव्य में अलंकारों का प्रयोग सहज रूप में, भावों के प्रकटीकरण हेतु हुआ है। पं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने घनानंद के अलंकार कौशल के विषय में लिखा है कि इन्होंने अलंकृत शैली का व्यवहार किया है, पर पांडित्य प्रदर्शन के लिए नहीं, हृदय की स्थिति का सच्चा आभास देने के लिए। इनके काव्य में अनुप्रास, उपमा, विरोधाभास विभावना, असंगति, विशेषोक्ति, अतिशयोक्ति इत्यादि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। उत्प्रेक्षा का सुन्दर उदाहरण देखिए –

लट लौल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनो रूप अवै घर च्वै।

श्लेष का उदाहरण देखिए –

देखिये दसा असाध अंखियां निपेटनि की,
भसमी बिथा पै नित लंघनि करति हैं।

6. छन्द :

इनके काव्य में कवित्त, सवैया और दोहा छन्दों का प्रयोग हुआ है। अपनी रचना 'वियोग बेलि' में इन्होंने विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है इनके छन्द पिंगल की दृष्टि से सर्वथा शुद्ध है।

7. भाषा :

ब्रजभाषा का जैसा प्रयोग घनानंद में मिलता है वैसा कहीं नहीं मिलता। इनकी साहित्यिक ब्रज भाषा में सहज माधुर्य विद्यमान है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में, ''भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा मानो इनके हृदय के साथ जुड़कर ऐसी वशवर्तिनी हो गई थी कि ये उसे अपनी अनूठी भावभंगी के साथ–साथ जिस रूप में चाहते थे, उस रूप में मोड़ सकते हैं। इनके हृदय का योग पाकर भाषा की नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ और यह पहले से कहीं अधिक बलवती दिखाई पड़ी।'' भाषा की नाद व्यंजना का उदाहरण देखिए –

ऐ रे बीर पौन! तेरो सबै ओर गौन वारि,
तोसों और कौन मने ढरकोही बानि दै।

इसके अतिरिक्त भावानुकूल पद—विन्यास, संगीतात्मकता, वाक्य—वक्रता मुहावरे और लोकोक्तियों का सटीक प्रयोग घनानंद की वाणी में हुआ है।

अंततः कह सकते है कि घनानंद रीतिकाल के स्वच्छंद काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं और भावपक्ष और कलापक्ष का अपूर्व समन्वय इनके काव्य की विशेषता है।

2.3.4 गुरु गोबिन्द सिंह : व्यक्तित्व और कृतित्व :

व्यक्तित्व :

औरंगजेब के अत्याचारों का विरोध करने वाले गुरु गोबिन्द सिंह का जन्म 1666 ई0 में पटना में हुआ और मृत्यु 1708 ई0 में हुई। इनके पिता गुरू तेग बहादुर और माता का नाम गुजरी था। इनके पिता सिक्खों के नवम् गुरु थे जिन्होंने कश्मीरी ब्राह्मणों की रक्षा के लिए, बालक गोविन्दराय के कहने पर अपनी कुर्बानी दी। बचपन में ही इनमें अलौकिकता दिखायी देती थी। पिता की शहादत के बाद इन्होंने शक्ति संघटन और फारसी और संस्कृत के ग्रंथों का अध्ययन किया। हिन्दी कवियों द्वारा इन्होंने पहली बार पंजाब में वीर रस में काव्य रचना का प्रणयन किया और स्वयं भी काव्य रचना की।

गुरु गोबिन्द सिंह का व्यक्तित्व प्रतिभा सम्पन्न, विचारक, साहसी शक्तिशाली और बलिदान की भावनाओं से अभिसिंचित होकर अत्याचार का विरोध करने की क्षमता रखता था। पिता को हिन्दुत्व की रक्षा के लिए प्रेरित करने वाले गोबिन्द राय, विचित्र नाटक में इस बलिदान के विषय में लिखते हैं—

तिलक जंजु राखा प्रभ ताका
कीनो बड़ो कलु महि साका।
धर्म हेत साका जिन किया
सीसु दिया परु सिररु न दीया।

गुरु गोबिन्द सिंह एक आध्यात्मिक पुरुष, सांसारिक व्यक्तित्व, एक योद्धा, एक गुरु जैसी विविधताओं को अपने व्यक्तित्व में समेटे हुए। उनकी गणना विश्व की उन महान् विभूतियों में की जा सकती है जिन्होंने अपना सर्वस्व मानवता हेतु अर्पित कर दिया। भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए जीवन पर्यंत संघर्ष किया। डॉ0 ध र्मपाल मैनी के अनुसार, ''गुरु गोबिन्द सिंह का व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति के जीवन दर्शन के ताने और व्यावहारिक जीवन के बाने से बुना हुआ ऐसा सशस्त्र सिद्ध हुआ, जो अनायास ही सबका शीत और ताप हर सकता था तथा जनमानस को नवीन स्फूर्ति प्रदान कर सकता था।'' गुरु जी ने मानवता के उद्धार हेतु भक्ति, शक्ति और साहित्य तीनों के सम्मिलित प्रभाव को अनिवार्य माना। डॉ0 जयभगवान गोयल लिखते हैं, ''उनका व्यक्तित्व वज्र सा कठोर, तड़ित सा तेजस्वी, सिंह सा सशक्त एवं पर्वतशिला सा दृढ़ था। वे एक अदम्य साहस एवं अडिग धैर्य से मुक्त गत्यात्मक एवं शक्तिशाली व्यक्तित्व के धनी थे।'' 'खालसा पंथ' की स्थापना करके इन्होंने समाज में से जातिवाद के दंश को दूर किया और सिंह की भांति जीवन जीने का साहस पैदा किया।

कृतित्व :

गुरुमुखी लिपि में मुद्रित गुरु गोबिन्द सिंह की रचनाओं का संग्रह 'दशम ग्रंथ' के नाम से अभिहित किया गया है। जो 1428 पृष्ठों का है जिसमें निम्नलिखित रचनाओं को संग्रहित किया गया है —

जाप, अकाल स्तुति, विचित्र नाटक, चण्डी—चरित्र-I चण्डी चरित्र—II वार भगउती जी की (चण्डी दी वार), ज्ञान प्रबोध, चौबीस अवतार, मेंहदी मीर, ब्रह्मावतार, रूद्रावतार, स्फुट सवैये, शास्त्र नाममाला, चरित्रोपाख्यान,

ज़फरनामा तथा हिकायतें।

गुरू गोबिन्द सिंह निर्गुण वादी थे इसलिए इनकी प्रथम पाँच रचनाओं में निराकार ब्रह्म स्तुति और आराधना का वर्णन है। इनकी कुछ रचनाओं में परम्परा का विरोध दिखाई देता है इसलिए कुछ विद्वानों का यह मत है कि यह रचनाएं (कृष्णावतार, रामावतार, ब्रह्मावतार, चरित्रोपाख्यान) किसी ओर द्वारा लिखित हैं। परन्तु डॉ0 जोध सिंह का यह मानना है कि गुरु गोबिन्द सिंह राम और कृष्ण के युगान्तकारी चरित्रों को अपने काव्य का विषय बनाकर उनके योद्धा स्वरूप की प्रतिष्ठापना की और इन नायकों के जीवन चरित्र के पुनर्मुल्यांकन की ओर संकेत किया।'' 'कृष्णावतार' में गुरु जी ने स्वयं लिखा है कि उनका उद्देश्य लोगों को धर्मयुद्ध के लिए प्रेरित करना है–

दसम कथा भगउत की भाखा करि बनाई।
अवर वासना नाहि प्रभ धरम युद्ध के चाई।।

2.3.5 काव्यगत विशेषताएं :

गुरु गोबिन्द सिंह की काव्यगत विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. निर्गुण ब्रह्म की उपासना :

गुरु जी ने पूर्व सिक्ख गुरुओं के समान ही निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना की है, ब्रह्म के अद्वैत रूप का ही बार–बार गुणगान किया है। दशम ग्रंथ के प्रारम्भ में संकलित दो रचनाओं में मुख्यतः निराकार का ही गुणगान हुआ है। जापु साहब में भगवान को 'रूप रंग अरु रेख भेख' से रहित कहा गया है–

चक्र चिहन अरु वरन जात अरु पात नहिंन जिह।
रूप रंग अरु भेख कोऊ कहि न सकति किह।।

2. मानवतावादी :

गुरु गोबिन्द सिंह जी नितान्त मानवतावादी थे, वे मानव का समूचित सम्मान करते थे, चाहे वे किसी देश, धर्म या जाति का क्यों न हो। उन्होंने मानव–मानव के बीच के भेद–भाव को अंगीकार नहीं किया। आध्यात्मिक स्तर पर वे सभी जीवों को परमात्मा का रूप स्वीकार करते हुए अभिन्न और अभेद मानते हैं–

हिन्दू तुरक कोऊ राफजी इमाम शाफी
मानस की जात सबै एकै पहचानवो।।
एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान।
खाक बाद आतश आब को रलाउ है।।

गुरु जी ने 'खालसा पंथ' की स्थापना करके सामाजिक विषमता को समाप्त किया क्योंकि जिन पाँच शिष्यों का चयन किया गया वे अलग–अलग जातियों से सम्बंधित थे। प्रादेशिक विभिन्नता एवं जातिगत विषमता से ऊपर उठा कर उन्हें मानवता की समतल भूमि पर खड़ा किया।

3. समन्वयवादी :

गुरु जी की भक्ति भावना पूर्ववर्ती गुरुओं की अपेक्षा समन्वयवादी थी इनकी निर्गुण भक्ति के साथ–साथ सगुण भक्ति भावना भी दृष्टिगोचर होती है–

कहूँ गीत के गवैया, कहूँ बन के बजैया।
कहूँ निरत के नचैया, कहूं नर के आकार हो।

राम और कृष्ण के जीवन का वर्णन विशेष तन्मयता से किया है–

जो इह कथा सुनै अरु गावै। दुख पाप तिह निकट न आवै।
बिसन भगत की ए फल होई। आधि बयाधि छवै सकी न कोई।

परन्तु कहीं भी अकाल पुरुष से श्रेष्ठ नहीं माना–

जिते राम हुए। सभै अन्त मूए।
जिते किसन हुए है। सभै अन्त है।।

इसके अतिरिक्त भक्ति और युद्ध का समन्वय भी गुरु जी की वाणी में पहली बार देखने को मिलता है हिन्दी साहित्य में पहली बार चण्डी अथवा महाकाल को भक्ति का आलम्बन बनाया गया। अतः बार–बार युद्ध क्षेत्र में जूझ मरने की प्रार्थना की है–

देहि शिवा वर मोहि इहि, शुभ करमन ते कबहूँ न टरो।
न डरौ अरि सो जब जाइ लरो निसचै कर आपनी जीत करों।
अरु सिक्ख हों अपने ही मन को इह लालच हउ गुण तउ उचरो।
जब आव की अउध निधान बनें, अति ही रन में तब जूझ मरों।।

4. प्रेम का महत्व :

गुरु जी ने भक्ति में प्रेम के महत्व को प्रतिपादित किया है। इनका यह मानना है कि प्रेम के अभाव में भक्ति कोरा ज्ञान बन जाती है और भगवत्प्राप्ति असंभव हो जाती है। ह्रदय हीन तीर्थ–सेवन, मूर्ति–पूजा, नमाज सभी की आलोचना गुरु जी ने अपनी वाणी में इस प्रकार की है–

कहा भयौ दोऊ लोचन मूँद के बैठि रह्यो बक ध्यान लगाओ।
नहात फिरयो लिए सात समुन्द्रन लोक गयो परलोक गवायो।
बासु कियो विख्यान सो बैठ के ऐसे ही ऐसे सुबैस बतायो।
साच कहू सुन लेहु सभै, जिन प्रेम कियो तिनही प्रभ पायो।।

5. संत सिपाही :

गुरु गोबिन्द सिंह नानक सम्प्रदाय की दशम ज्योत थे। उन्होंने धर्म में प्रचलित रूढ़ियों और पाखंडों का डट कर विरोध किया। उनका मूलभूत उद्देश्य धर्म विस्तार करना और दुष्टों को नष्ट करना था। विचित्र नाटक में इस प्रकार लिखते हैं–

धरम चलावन संत उबारन।
दुशट सभन को मूल उपारन।

एक संत के उत्तरदायित्व को निभाते हुए उन्होंने साहित्य के माध्यम से अपने शिष्यों को त्याग, आत्म–सम्मान और ईश्वर–प्रेम और निःस्वार्थ जीवन व्यतीत करने का कठोर आदर्श उपस्थित किया।

मुगलकालीन कठोर परिस्थितियों ने संत गुरु गोबिन्द सिंह को सिपाही बना दिया। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, ''स्वभाव से वे संत थे, परिस्थितियों ने उन्हें योद्धा बनाया। उन्होंने शस्त्र धारण किया, साम्राज्य स्थापना के लिए नहीं, अन्याय और अत्याचार के विध्वंस के लिए। उन्होंने कविताएं लिखीं, वाग् विलास के लिए नहीं, उपेक्षितों और अवमानितों में आत्म–विश्वास जगाने के लिए। वे संत थे, वे कवि थे, वे लोकनायक गुरु थे।'' गुरु गोबिन्द सिंह ने औरंगजेब को लिखे पत्र 'जफरनामा' में स्पष्ट किया है जब स्वार्थ पूर्ति के सभी उपाय चुक जायें तो हाथ में तलवार उठाना धर्म सम्मत है–

''चूँ कार अज हमह हीलते दर गुजश्त।
हलाल–अस्त बुर्दन व शमशीर दस्त।।''

'खालसा पंथ' की स्थापना भी गुरु जी के सिपाही रूप का ही परिचायक है।

6. कला पक्ष :

साहित्य या काव्य का अंतरंग उसका भाव पक्ष होता है और बहिरंग कला पक्ष होता है। हिन्दी साहित्य कोश

में बाहरी पक्ष को काव्य का शरीर और अंतरंग पक्ष को काव्य की आत्मा बताया गया है। छन्द, अलंकार, भाषा शैली, मुहावरे लोकोक्तियों आदि का प्रयोग कला पक्ष के विभिन्न अंग होते हैं।

गुरु गोबिन्द सिंह के काव्य में तीन मात्राओं के एकाक्षरी छन्द से लेकर 47 मात्राओं के कवित्त तक छोटे–बड़े कई शब्दों का प्रयोग हुआ है। रीतिकालीन चमत्कारवादी प्रवृत्ति से प्रभावित गुरू जी के काव्य में अनुप्रास, उपमा, रूपक इत्यादि अलंकारों का अत्यधिक प्रयोग किया है। भाषा की दृष्टि से गुरु गोबिन्द सिंह का काव्य अन्य सिक्ख गुरुओं की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। अपने समय की प्रचलित भाषाओं फारसी, पंजाबी और ब्रज पर गुरु जी का समान अधिकार है। भक्तिमूलक शैली, खण्डनात्मक शैली का प्रयोग किया। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि गुरु गोबिन्द सिंह संत, सिपाही और साहित्यकार थे।

2.3.6 सप्रसंग व्याख्या :

1. झलकै अति सुन्दर..................................अवै धरि च्वै।।

शब्दार्थ : आनन–मुख। काननि–कान। जलजावलि–मोतियों की माला। च्वै–चूने वाला, गिरने वाला।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश रीतिकालीन कवि घनानन्द द्वारा लिखित है। प्रस्तुत पद्यांश में कवि नायिका की सुन्दरता का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या : घनानन्द कवि कहते हैं कि उस नायिका का अति सुन्दर गोरा मुख चमक रहा है। उसकी आँखें प्रेम के नशे में मस्त, कानों को छूती हुई शोभा पा रही है। उसके हँसने बोलने या ह्रदय पर फूलों की वर्षा–सी हो जाती है। उसकी चंचल लटें गालों पर खेल करती हैं अथवा छेड़खानी करती हैं। उसके सुन्दर गले में दो लड़ियों वाली मोतियों की अथवा कमलों की माला सजी हुई है। उसके अंग–अंग में कान्ति की लहर उठती है। ऐसा प्रतीत है कि मानो अभी अभी उस की कान्ति पृथ्वी पर टपक पड़ेगी। भाव यह है कि वह नायिका अत्यन्त सुन्दर है।

विशेष :

1. लट लोल, कपोल कलोल करैं, कल–कंठ में अनुप्रास अलंकार है।
2. अंग–अंग में पुनारुक्तिप्रकाश है।
3. नायिका की सुन्दरता का वर्णन है।

2. एरे बीर पौन!..नेकु आनि दै।

शब्दार्थ : बीर–भाई। पौन–पवन। सब ओर–सब तरफ। गौन–गमन जाना। बीरी–बीड़ा उठाने वाला। मनै–मन को। बानि दै–आदत डालो। ओछे–छोड़, तुच्छा। सुखदान–सुख का दान। धूरि–धूली। नेकु–थोड़ी सी। आनि दै–ला दे।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश रीतिकालीन, प्रेम की पीर के, कवि घनानन्द द्वारा लिखित कविता में से लिया गया है। प्रस्तुत पद्यांश में घनानन्द कवि पवन को दूत बनाकर अपनी प्रेमिका के पास भेजना चाहते हैं ताकि वह उसे उसकी प्रियतमा के चरणों की धूली ला दे, जिसे अपनी आँखों में भर कर विरह की व्यथा से छुटकारा पा जाए।

व्याख्या : घनानन्द कवि पवन को दूत बनाकर अपनी प्रेमिका सुजान के पास भेजना चाहते हैं, इसलिए वे पवन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं–ऐ मेरे भाई पवन, तेरी सभी दिशाओं में गमन होता है। तू किसी भी काम को करने का बीड़ा उठाने वाला है। तुम्हारे जैसा और कौन हो सकता है? हे पवन! जरा अपने मन को मेरी ओर झुकाने की आदत डालो अर्थात् तुम मेरा काम करने का बीड़ा उठाओ। हे पवन! तुम जगत् के प्राण हो तथा सब छोटे बड़ों के लिए तुम्हारा व्यवहार समान है। भाव यह है कि तुम किसी से भेदभाव नहीं करने वाले अतः मेरी बात अवश्य मानोगे अथवा मेरा काम अवश्य

करोगे। तू घनानन्द कवि के प्राणों का आधार है अतः तुम दुखियों को सुख का दान दो। हे पवन! तू जान ले वह कान्तिमय, बहुत गुणों वाली अन्ततः मुझे बहुत प्यारी है, वह मेरी प्रिया, निर्मोही बन कर अब मुझे पहचानने से इन्कार करती है। हे पवन! तुम उसके चरणों की थोड़ी धूली मुझे ला दो, जो मेरे लिए विरह की पीड़ा को मिटाने की औषधि या जड़ी–बूटी है, मैं उसे अपनी आंखों में भर लूंगा।

विशेष : 1. पवन को दूत बना कर भेजने की प्रथा प्राचीन काल से ही चली आ रही है।

3. अधि सूधो सनेह...देहु छटाँक नहीं।

शब्दार्थ : अति सूधो–बहुत सीधा। सनेह–प्रेम। नेकु–थोड़ा भी। सयानप बाँक–टेढ़ी, चतुराई, कुटिलता। आपनपौ–अपनापन। झझकै–झिझकते हैं। निसाँक–शंका रहित। आँक नहीं–रेखा नहीं। लेहू–लेते हो।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश रीतिकालीन कवि घनानन्द द्वारा लिखित है। प्रस्तुत पंक्तियों में घनानन्द प्रेम के मार्ग के सम्बन्ध में बता रहे हैं जो बड़ा सीधा है उसमें थोड़ा भी घुमाव फेर नहीं है, किन्तु उसकी प्रेमिका उस के साथ बेईमानी कर रही है उसका दिल लेकर भी दर्शन नहीं देती।

व्याख्या : घनानन्द अपनी प्रेमिका सुजान को उलाहना देते हुए कहते हैं कि प्रेम का मार्ग तो अत्यन्त सीधा अर्थात् सरल है। इसमें चतुराई और कुटिलता के लिए थोड़ा भी स्थान नहीं है। यहाँ तो सच्चा प्रेमी अपने अहम् अथवा अभिमान को त्याग कर चलता है और जो छलकपट करने वाले और शंका रहित नहीं होते हैं वे इस मार्ग पर चलते हुए झिझकते हैं। घनानन्द कहते हैं कि मेरी प्यारी सुजान! सुनो हमारे मन में एक को छोड़ कर और कोई दूसरी रेखा नहीं है क्योंकि यह एक प्रेम रेखा खिंच गई तो बस अब दूसरी मेरे मन में नहीं खिंच सकती। भाव यह है कि मैं केवल तुम्हीं से प्रेम करता हूँ। परन्तु तुम जाने कैसी पट्टी पढ़ी हो अथवा तुमने न जाने कैसी शिक्षा पाई है कि हमारा प्यार तो मन भर लेती हो और बदले में अपनी छटा का अंश भी नहीं देती।

विशेष : 1. सूधो सनेह, पाटी पढ़े में अनुप्रास अलंकार है।
2. घनानन्द की प्रेम की पीड़ा को दिखाया गया है।

4. काम न क्रोधा...श्री पदमापति लैहै।।

शब्दार्थ : सोग–शोक। भोग–भोग विलास। भै–डर। विहीन–रहित। विरक्त–उदासीन। अगेह–बिना घर–बार के। अछै–अच्छा। जान–जानने वाले। अजान–अपरिचित। ज़मीन–धरती पर रहने वाले। डोलत–भटकती है। सुधि–होश, चेतना।

प्रसंग : प्रस्तुत सवैया सिक्खों के दशम गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा रचित 'दशम ग्रंथ' में से लिया गया है। इन सवैयों में गुरु जी ने अकाल पुरुष की विशेषताओं का वर्णन करते हुए ईश्वर को सब कुछ देने वाला माना है।

व्याख्या: गुरु जी कहते हैं कि ईश्वर काम, क्रोध, लोभ, मोह, रोग, शोक विषयवासनाओं तथा भय से परे है अर्थात् उसमें ये गुण नहीं होते। वह शरीर से रहित अर्थात् निराकार होकर भी सभी प्राणियों से स्नेह करने वाला है। फिर भी वह स्नेह अर्थात् मोह माया से परे है अर्थात् विरक्त है। वह बिना घर बार के है अर्थात् सब जगह विद्यमान है। ईश्वर जानने वालों को भी देता है और न जानने वालों को भी देता है। वह धरती पर रहने वालों तथा आकाश में विचरण करने वालों सभी को देता है। गुरु जी कहते हैं कि अरे मनुष्य तुम्हारी चेतना किस कारण इस संसार की मोह माया में भटक रही है तुम्हें तो शीघ्र अतिशीघ्र सुन्दर रमापति भगवान् विष्णु की शरण में चले जाना चाहिए। तभी तुम्हारा उद्धार

होगा।

विशेष : 1. परमात्मा के निराकार रूप का वर्णन किया गया है।

2. प्रभु की उदारता का वर्णन किया गया है।

5. रोगन ते अरु..पट बीच बचांवै।।

शब्दार्थः सोगन–शोक। जोगन–डूबना। सत्रु–शत्रु। चलावत–देना, मारना। राखत है–रक्षा करता है। संबूह–समूह। भेटन–स्पर्श। सुपेट–गर्भ। पट–द्वार।

प्रसंग : प्रस्तुत सवैया सिक्खों के दशम गुरू गोबिन्द सिंह द्वारा रचित 'दशम ग्रंथ' में से लिया गया है। प्रस्तुत पंक्तियों में गुरु जी ईश्वर की पालनहार शक्ति के बारे में बताया है।

व्याख्याः गुरु जी ईश्वर की पालनहार शक्ति की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि हे मनुष्य! ईश्वर ही तुम्हें रोग से, शोक से, जल में डूबने से अनेक प्रकार से बचाता है। भले ही शत्रु तुम पर अनेक वार करे, तुम्हें जख्मी करने की कोशिश करे तो ईश्वर की कृपा से ही तुम्हारे शरीर पर उसका एक भी वार नहीं लगेगा अथवा तुम्हें कोई घाव नहीं लगेगा। वह ईश्वर तो अपना हाथ देकर तुम्हारी रक्षा करता है। पापों का समूह भी उसे तुम्हारा कल्याण करने से नहीं रोकता। तात्पर्य यह है कि ईश्वर पापियों, पतितों का भी उद्धार करता है। दूसरी बातों की भी कहाँ तक बात की जाए वह तुम्हारी गर्भ के द्वार में भी रक्षा करता है अर्थात् गर्भकाल में भी तुम्हारी रक्षा करता है।

विशेष : 1. ईश्वर हर पल, हर हालत में मनुष्य की रक्षा करता है। वहीं इस जगत का पालनहार और रक्षा करने वाला है। इसलिए मनुष्य को ऐसे प्रभु की पूजा करनी चाहिए।

3. तीर्थ कोटि किए इसनान..अन्तक–धाम सिधारे।

शब्दार्थ : कोटि–करोड़ों, अनेक। अष्टाँग–आठ अंगों वाला योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारण, ध्यान, समाधि)

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश सिक्खों के दशम गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा रचित 'दशम ग्रन्थ' में से लिया गया है। प्रस्तुत सवैये में गुरू जी अकाल पुरुष की भक्ति करने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि यदि मोक्ष पद चाहिए तो भक्ति ही उसका एकमात्र उपाय है।

व्याख्या : गुरु जी कहते हैं कि लोग अनेक तीर्थों में स्नान करते हैं, कई तरह के दान देते हैं, कई तरह के व्रत और नियम का पालन करते हैं, तपस्वियों का वेश धारण करके देश, देशान्तरों का भ्रमण करते हैं। सिर पर जटाएँ धारण करके जंगलों में निवास करते हैं किन्तु उन्हें परम प्यारे ईश्वर के दर्शन नहीं हुए। कुछ लोगों ने योगासन किए तांत्रिक पद्धति के अनुसार कई तरह की पूजा की, भस्म लगाकर मुँह काला किया किन्तु फिर भी वे लोग यमलोक चले गए अर्थात् उनकी मृत्यु हो गई। उन्हें मुक्ति नहीं मिली। जन्म–मरण के चक्कर से छुटकारा नहीं मिला। इसका कारण यह था कि उन्होंने दीन–दयालु अनादि, अनन्त तथा अजर, अमर भगवान् का सच्चे हृदय से भजन नहीं किया। गुरु जी के कहने का तात्पर्य यह है कि इन्सान को मोक्ष पद तब ही प्राप्त होता है, जब वह सच्चे हृदय से श्रद्धा पूर्वक ईश्वर की भक्ति करता है।

विशेष : 1. धार्मिक कर्मकांडों का विरोध किया गया है।

2.3.7 लघु प्रश्नोत्तर :

1. घनानंद का सम्बन्ध रीतिकाल की किस काव्यधारा से है?

उत्तर : घनानंद का सम्बन्ध रीतिकाल की स्वच्छंद काव्यधारा से है क्योंकि इन्होंने रीति की परिपाटी पर बंधाकर काव्य रचना नहीं की।

2. घनानंद को 'प्रेम की पीर' का कवि क्यों कहा जाता है?

उत्तर : क्योंकि घनानंद ने प्रेम के वियोग का बहुत मार्मिक वर्णन किया जो हृदय को छूता है।

3. घनानंद की काव्यगत विशेषताएं बताएं।

उत्तर : प्रेम और सौन्दर्य, भक्ति भावना, वाक्य वक्रता, वियोग वर्णन इत्यादि।

4. घनानंद की भाषा पर टिप्पणी करें।

उत्तर : घनानंद ने ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग किया। इनकी भाषा में माधुर्य गुण विद्यमान है। आचार्य शुक्ल ने भी इनकी भाषा प्रयोग की प्रशंसा की है।

5. गुरु गोबिन्द सिंह की किन्हीं चार रचनाओं का नाम लिखें।

उत्तर : जाप साहिब, अकाल–स्तुति, चण्डी दी वार, विचित्र नाटक।

6. गुरु जी कोई चार काव्यगत विशेषताएं लिखें।

उत्तर : 1. मानवतावादी 2. समन्वयवादी 3. निर्गुण ब्रह्म की आराधना 4. साहित्यकार

7. 'विचित्र नाटक' रचना के विषय में लिखें।

उत्तर : यह गुरु जी की अधूरी आत्मकथा है जिसमें वंश परम्परा, सिक्खों के गुरुओं का वर्णन, सुधारवादी विचारधारा, युद्धों का वर्णन, ईश्वर प्रेम और शस्त्रों के प्रति दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला गया है।

8. 'जफरनामा' क्या है?

उत्तर : 'जफरनामा' फारसी में लिखित गुरु गोबिन्द सिंह की रचना है। जिसमें औरंगजेब के अत्याचार और अन्याय का वर्णन युद्ध की घटनाओं द्वारा किया गया है।

9. 'खालसा पंथ' की स्थापना गुरु जी ने क्यों की?

उत्तर : क्योंकि गुरु जी का लक्ष्य मृत प्रायः हो चुके मध्यकालीन समाज में रूह फूंकना था।

2.3.8 सहायक पुस्तकें :

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य कोश भाग–2 – धीरेन्द्र वर्मा (सम्पा0)
3. मध्ययुगीन काव्य साधना – डॉ0 रामचन्द्र तिवारी
4. हिन्दी साहित्य कोश–I
5. गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य – हरिभजन सिंह
6. मध्ययुगीन निर्गुण चेतना – धर्मपाल मैनी
7. गुरु गोबिन्द सिंह और उनकी हिन्दी कविता – महीप सिंह।

2.3.9 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. घनानंद के व्यक्तित्व को परिचय देते हुए साहित्यिक विशेषताएं लिखें।
2. घनानंद को 'प्रेम की पीर' का कवि क्यों कहा जाता है?
3. घनानंद की काव्यगत विशेषताएं लिखें।
4. गुरु गोबिन्द सिंह के व्यक्तित्व का परिचय देते हुए साहित्यिक विशेषताएं लिखें।
5. गुरु गोबिन्द सिंह के संत और सिपाही रूप पर प्रकाश डालिए।
6. गुरु गोबिन्द सिंह भक्ति भावना पर विचार कीजिए।

पाठ संख्या : 2.4 **लेखिका : डॉ0 सुरिन्द्रपाल कौर**

जयशंकर प्रसाद : व्यक्तित्व एवं कृतित्व और 'ग्राम' कहानी का परिचय

रूपरेखा :

2.4.0 उद्देश्य
2.4.1 भूमिका
2.4.2 जयशंकर प्रसाद का साहित्यिक परिचय
2.4.3 कहानी के तत्त्व
2.4.4 'ग्राम' कहानी का परिचय
2.4.5 लघु प्रश्नोत्तर
2.4.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.4.0 उद्देश्य :

आप इस पाठ को पढ़ने के पश्चात् प्रसिद्ध लेखक जयशंकर प्रसाद के हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व को जानने के साथ–साथ, उनकी साहित्यिक विशेषताओं से परिचित हो पाएंगे। कहानी के विभिन्न तत्त्वों पर भी विचार किया जाएगा।

2.4.1 भूमिका :

जयशंकर प्रसाद हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि, नाटककार आदि प्रमुख आधार स्तम्भों के रूप में प्रसिद्ध हैं। आप छायावादी काव्य के प्रमुख आधार स्तम्भों में से एक हैं। एक कथाकार के रूप में भी उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। आपकी सभी रचनाएं हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधियां मानी जाती हैं। प्रसाद हिन्दी साहित्य जगत के महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं। इन्होंने कवि, नाटककार, उपन्यासकार एवं कहानीकार के रूप में साहित्य की महान सेवा की और एक नवीन युग का प्रवर्त्तन करके अपनी प्रतिभा का उज्जवल प्रकाश फैलाया।

2.4.2 जयशंकर प्रसाद का साहित्यिक परिचय :

प्रसाद का जन्म बनारस में 'सुघनी साहु' वैश्य परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम बाबू देवी प्रसाद और माता का नाम मुन्नी देवी था। माता–पिता का देहान्त होने पर प्रसाद को बड़ी छोटी आयु में पढ़ाई छोड़कर पिता का व्यवसाय संभालना पड़ा। पढ़ने में रुचि होने के कारण इन्होंने घर पर ही हिन्दी, उर्दू, पारसी, अंग्रेजी, शैव दर्शन तथा बौद्ध दर्शन का गहन अध्ययन किया। प्रसाद व्यवहार कुशल उदार, कर्मठ एवं भावुक व्यक्तित्व वाले थे। भारतीय गौरव का गुणगान एवं अतीत में आस्था रखने वाले प्रसाद को नवीनता के प्रति भी गहरी रुचि थी। भारतीय इतिहास दर्शन तथा धर्म में इन्होंने गहन अध्ययन किया। बहुमुखी प्रतिभा के धनी प्रसाद का कृतित्व भी बहुआयामी रहा। इनके साहित्य में जीवन की व्यापकता एवं समग्रता के सहज दर्शन होते हैं। भारतीय इतिहास में से महान घटनाओं को लेकर इन्होंने देश के गौरवपूर्ण अतीत का समग्र चित्र प्रस्तुत किया जो भारतीय जनता के लिए प्रेरणा दायक सिद्ध हुए।

प्रसाद छायावादी साहित्यकार हैं। इन्होंने हिन्दी साहित्य में सुन्दर रचनाएं प्रदान की और कीर्तिमान स्थापित किया इन्हें इतिहास एवं दर्शन का विस्तृत ज्ञान प्राप्त था। इनकी रचनाओं में अधिकतर विषय भारत के प्राचीन इतिहास से लिये गए हैं, प्रसाद ने इन प्राचीन कथाओं में वर्तमान के प्रति सजगता दिखाई है और इनके माध

यम से अतीत भारतीय गौरव का गुणगान किया है। इनके साहित्य में जीवन का व्यापक चित्र विद्यमान है और मुख्य रूप से राष्ट्रप्रेम, विश्व मंगल, त्याग एवं बलिदान की भावना के साथ–साथ मानव–कल्याण में प्रसाद को विशेष रुचि दिखाई देती है। इनके साहित्य की प्रमुख विशेषता प्राचीन भारतीय संस्कृति का चित्रण है। इन्होंने अपने साहित्य में आदर्श के साथ–साथ यथार्थ का निरूपण भी किया।

भारतीय इतिहास की घटनाओं को आधार बना कर रचना करते समय कल्पना का सुन्दर प्रयोग किया। प्रसाद मूलतः एक कवि थे इसलिए उनकी कथात्मक रचनाओं में भी उनका कवि रूप उभरता है। उनके नाटकों में बहुत सुन्दर गीतों का प्रयोग हुआ है। प्रसाद के तीन प्रकार के गीत विशेष रूप से प्रसिद्ध है–करुणा और शान्त रस प्रधान गीत, प्रेमगीत और राष्ट्रप्रेम से परिपूर्ण गीत। प्रसाद की प्रसिद्ध काव्य रचनाएं हैं – उर्वशी, वनमिलन, प्रेमराज्य, अयोध्या का उद्धार, करुणालय, काननकुसुम, प्रेमपथिक, महाराणा का महत्त्व, आँसू, लहर और कामायनी। इनके प्रसिद्ध नाटक हैं–राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी। कथा साहित्य के अन्तर्गत प्रसाद ने केवल तीन उपन्यास लिखे – कंकाल, तितली और इरावती। इनके प्रमुख कहानी–संग्रह हैं–छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आंधी और इन्द्रजाल।

आधुनिक काल के कवियों में प्रसाद का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनकी गणना श्रेष्ठ कवियों में की जाती है। आप एक दार्शनिक कवि के रूप में विख्यात हैं। प्रेम एवं सौन्दर्य के उपासक प्रसाद एक युग प्रवर्त्तक कवि हैं जो छायावाद के प्रवर्त्तक भी माने जाते हैं। विद्वान प्रसाद को हिन्दी के कालिदास, शेक्सपीयर एवं रविन्द्रनाथ ठाकुर मानते हैं। वह एक गहन विचारक, तत्त्वदर्शी, चिन्तक एवं युग प्रवर्त्तक कलाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। सहनशीलता, धैर्य एवं आशामयी आस्था इनके व्यक्तित्व के गुण हैं जिसका प्रभाव इनकी रचनाओं पर भी मिलता है। इनके व्यक्तित्व में प्रकृति का भी योगदान रहा है। बहुत छोटी आयु में इन्होंने कुरुक्षेत्र, पुष्कर, ओंकेश्वर, उज्जैन, ब्रजमंडल तथा अयोध्या आदि प्रसिद्ध धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा की और इन स्थानों से संबंधित इतिहास का ज्ञान अर्जित किया। इन यात्राओं के दौरान पर्वतमालाओं एवं प्राकृतिक दृश्यों ने इन्हें विशेष रूप से आकर्षित किया। प्रसाद का समूचा साहित्य इनके इस अनुभव का प्रतिबिम्ब जान पड़ता है। एक कथाकार के रूप में प्रसाद का साहित्य अपनी संरचना–प्रतिभा के नये आयाम प्रस्तुत करता है। इनकी अधिकांश कहानियां इतिहासाभास लिए हुए हैं और उनमें रोमांटिक भाव–बोध के साथ–साथ यथार्थ तथा कल्पना का सुन्दर संयोग मिलता है।

प्रसाद हिन्दी साहित्य के महानतम कवि–विचारक एवं अनुपम रचनाकार के रूप में विख्यात हैं। इनकी रचनाएं अपने गुण धर्म के कारण भारतीय जनता के हृदय को प्रेरित एवं रोमांचित करने में सफल हैं। प्रसाद की रचनाएं मंगलदीप बन कर युगों–युगों तक भारतीय जनमानस को ज्योति प्रदान करती रहेगी।

2.4.3 कहानी के तत्व :

इस **एकांश में आपको जयशंकर प्रसाद** की कहानियों से परिचित करवाया जाएगा। प्रसाद की 'प्रतिनिधि कहानियाँ' नामक कहानी–संग्रह आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित किया गया है जिसकी प्रथम पाँच कहानियां अध्ययन हेतु निश्चित की गयी हैं। इन कहानियों के अध्ययन के पहले यह जानना जरूरी है कि कहानी के प्रमुख तत्व क्या होते हैं। कहानी का प्रमुख तत्व होता है उसकी कथावस्तु या कथानक। साहित्यिक भाषा में हम इसे मूल विषय, मुख्य विचार या व्यथा भी कह सकते हैं। लेखक अपने आसपास के परिवेश में से किसी विशेष घटना या व्यक्ति से प्रभावित होकर किसी घटना या विशेष व्यवहार के आधार पर विषय चुनता है। अपनी प्रतिभा तथा कौशल द्वारा कल्पना के योग द्वारा अपनी भाषा के माध्यम से उस विशेष अनुभव को हमारे सामने प्रस्तुत करता है। जिस समाज में हम रहते हैं उसी में लेखक भी विचरता है। लेखक में प्रतिभा

होती है कि वह किसी सामान्य या विशेष घटना या व्यवहार को अपने कौशल द्वारा पाठक के सामने लाने का कौशल रखता है। इसके लिए वह कल्पना के साथ–साथ सुन्दर भाषा शैली का प्रयोग भी करता है जिससे उसकी अनुभूतियां बड़ी सहजता से पाठतों तक पहुंच सकती है। कहानी का विषय इसलिये भी महत्त्वपूर्ण होता है कि उस विषय के माध्यम से लेखक जो कुछ अनुभव करता है उसे अभिव्यक्ति मिलती है। अपने अनुभवों को दूसरों तक पहुंचाने के लिए लेखक को विषय का सही चुनाव करना पड़ता है। विषय वस्तु या कथावस्तु कहानी का आधार तत्व है जो कहानी के अन्य तत्वों के सहयोग से उसे सुन्दर रचना का स्वरूप प्रदान करती है।

कहानी का **दूसरा तत्व** चरित्र–चित्रण होता है। कोई भी विषय तभी कहानी का स्वरूप प्राप्त करता है जब उसमें पात्र हों अर्थात् कथा पात्रों के माध्यम से ही आगे बढ़ती है। पात्रों के अभाव में कहानी का अस्तित्व असंभव है। साहित्य का सीधा सम्बन्ध समाज से है और समाज में रहने वाले स्त्री–पुरुष ही इसके मुख्य पात्र होते हैं। लेखक पात्रों को केवल प्रस्तुत ही नहीं करता बल्कि उनके चरित्र के चित्रण द्वारा अपनी बात भी करता है यदि वह किसी सामाजिक बुराई, कुप्रथा या रीतिरिवाज पर आधारित कहानी लिखता है तो उस विषय के बारे उसके अपने निजी विचारों को पात्रों के माध्यम से व्यक्त करता है। किसी भी रचना को पात्रों के बिना प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। इससे स्पष्ट है कि पात्र तथा उनका चरित्र–चित्रण कहानी का महत्त्वपूर्ण अंग है जिसके माध्यम से लेखक अपने अनुभवों, विचारों तथा जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण को व्यक्त करता है।

कहानी का **तीसरा तत्व** संवाद या कथोपकथन है। जैसा कि हमने ऊपर कहा है कि लेखक अपने विचारों तथा संदेशों को पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत करता है, तो यह भी अनिवार्य है कि पात्रों के संवाद ही माध्यम बन कर आते हैं। पात्र जो भी बातें आपस में करते हैं उन्हीं के आधार पर हम यह जान पाते हैं कि कहानी क्या है और उसमें किस विषय पर बात की जा रही है। वास्तव में कहानी का विषय पात्रों के संवादों के आधार पर ही विकसित होता है। कहानी की मूल समस्या उनके कथोपकथनों के आधार पर पाठकों के सामने स्पष्ट होती जाती है। लेखक जैसा चरित्र पात्रों का दिखाना चाहता है उसी के अनुरूप वह उनके संवाद लिखता है। मनुष्य द्वारा कही गयी बातें या किया गया व्यवहार ही उसके चरित्र का द्योतक होता है। इस दृष्टि से पात्रों के संवाद अति महत्त्वपूर्ण होते हैं। इनके द्वारा कहानी भी विकसित होती है और पात्रों के चरित्र पर भी प्रकाश डाला जा सकता है। संवादों के आधार पर लेखक की भाषा–शैली का ज्ञान भी सहज ही हो जाता है।

कहानी में जिस परिवेश या वातावरण का उल्लेख होता है, उसका भी अपना महत्त्व होता है। कहानी में प्रयुक्त भाषा एवं शब्दावली, रीतिरिवाज तथा सामाजिक वातावरण का वर्णन भी उसी के अनुसार होता है। यदि लेखक किसी ग्रामीण समस्या पर कहानी लिखता है तो उसे ग्रामीण वातावरण, वहां के रीतिरिवाज, रहन–सहन, सामाजिक–धार्मिक विश्वास तथा वहां की भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। वातावरण के अनुसार ही वह पात्रों का चयन भी करता है क्योंकि उसे उन्हीं पात्रों के माध्यम से उसे उस परिवेश की किसी समस्या को प्रकाशित करना पड़ता है। इसी तरह यदि वह किसी शहरी परिवेश पर कहानी लिखता है तो उसे वहां से ही पात्रों का चयन करना होगा और उसी के अनुरूप भाषा का भी प्रयोग करना पड़ेगा। कहानी का परिवेश या वातावरण उसे एक अलग स्वरूप प्रदान करने में सहायक होता है जहां से पाठक के सामने एक विशेष चित्र फलक प्रस्तुत हो जाता है और वह बड़ी सहजता से कहानी की वास्तविक समस्या को समझ लेता है।

कहानी में भाषा शैली का भी विशेष महत्त्व होता है। भाषा ही वह साधन है जिसके माध्यम से लेखक अपने

विचारों को प्रस्तुत कर सकता है। भाषा ही कहानी को आदि से अन्त तक विकसित करती है। इसके अभाव में किसी भी रचना की कल्पना नहीं की जा सकती। भाषा का चुनाव भी पात्रों के सामाजिक स्तर के अनुसार ही किया जाता है। यदि कहानी में शिक्षित तथा अशिक्षित पात्र दोनों ही हैं तो दोनों की भाषा अलग–अलग होगी। कहानी में जो समस्या चित्रित की गयी है उसकी श्रेणी या किस्म के आधार पर ही लेखक भाषा का चुनाव करेगा। यह भी सत्य है कि लेखकों की भाषा में भी अन्तर होता है। कुछ लेखक सरल हिन्दी का प्रयोग करते हैं और कुछ संस्कृतनिष्ठ कलिष्ट भाषा का। यह निश्चित है कि कहानी की विषय–वस्तु के अनुसार ही भाषा का प्रयोग किया जाता है। पात्रों के अनुसार लिखे गए संवाद कहानी में रुचि एवं मनोरंजन का भाव पैदा करने में सहायक सिद्ध होते हैं। कहानी के विषय के अनुसार भाषा में विशेष शब्दों का प्रयोग होना भी स्वाभाविक होता है। यदि लेखक किसी मनोवैज्ञानिक समस्या को लेकर कहानी लिखता है तो मनोविज्ञान के शब्दों का प्रयोग अवश्य करेगा। इसी तरह यदि कथावस्तु का सम्बन्ध किसी धार्मिक विषय से है तो धर्म सम्बन्धी शब्द निश्चित रूप से प्रयुक्त हो जाएंगे। शैली के संबंध में कहा जा सकता है कि विषय के अनुसार ही शैली बनती है। कभी–कभी लेखक किसी स्थिति का लम्बा–चौड़ा विवरण देते हुए वर्णनात्मक शैली का प्रयोग करता है, कहीं संवादात्मक शैली के माध्यम से कहानी कहता है। कुछ कहानियां आत्मकथात्मक ''मैं'' शैली में लिखी जाती हैं या कुछ डायरी शैली में भी लिखी जाती है। यह लेखक का चुनाव है कि वह किस ढंग से कथा कहना चाहता है। एक तत्व की दृष्टि से इसका विशेष महत्व होता है क्योंकि कहानी में प्रयोग की गयी शैली से उसका स्वरूप निर्धारित होता है।

कहानी का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व होता है उसका उद्देश्य या संदेश। प्रत्येक कहानीकार किसी विशेष अनुभव से प्रभावित होकर कहानी की रचना करता है जिसके पीछे उसका कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। इससे वह पाठक के सामने कोई संदेश प्रस्तुत करता है जो उसका निजी दृष्टिकोण होता है। इसमें लेखक के अपने विश्वास, सिद्धान्त एवं अनुभव विशेष महत्त्वपूर्ण होते हैं। किसी लेखक का संदेश आदर्शवादी है, किसी का मार्क्सवादी और किसी का यथार्थवादी। किसी भी समस्या या स्थिति को अपने अनुभव के आधार पर परखना, अपने विचारों के आधार पर उसका विश्लेषण करना और अपने मत के अनुसार उस का उद्देश्य सिद्ध करना लेखक की प्रतिभा और कौशल पर आधारित होता है। कोई भी रचना उद्देश्य रहित नहीं होती और रचना का उद्देश्य या संदेश रचना का आधार तत्व होती है जिसके आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाता है। इसे ही रचना की मूल संवेदना कहा जाता है। लेखक जिस संदेश को पाठक तक पहुंचाना चाहता है यदि वह सफल हो जाए तो लेखक और पाठक अनुभव के एक ही स्तर पर आ जाते हैं और रचना की मूल संवेदना स्पष्ट हो जाती है। अगले पाठों में हम प्रसाद की कहानियों की तात्विक समीक्षा प्रस्तुत करेंगे।

2.4.4 'ग्राम' कहानी का परिचय :

1. कथावस्तु :

कहानी एक ग्रामीण क्षेत्र से शुरू होती है जहां एक छोटा सा रेलवे स्टेशन है। संध्या का समय है। श्रावण माह है और बादल छाये हुए हैं। स्टेशन पर घंटी बजती है जो गाड़ी के आने की सूचना दे रही है। छोटी–छोटी बूंदें गिर रही हैं और हवा चल रही है। स्टेशन पर एक–दो बत्तियां भी जल रही हैं। थोड़ी देर बाद वर्षा रुक गई और आकाश में चाँद दिखायी दे रहा है। रेलगाड़ी स्टेशन की ओर बढ़ती चली आ रही है। सिग्नलर ने फिर घंटा बताया और यात्री अपना सामान संभालते हुए गाड़ी की ओर बढ़ने लगते हैं। एक स्त्री एक पुरुष के साथ गाड़ी में बैठने जा रही है जिसे देख कर दो अन्य स्त्रियां दूर खड़ी रो रही है। लगता है उनकी सहेली उन्हें छोड़कर कहीं दूर जा रही है। उनकी ओर देखती हुई वह सेकंड कलास के डिब्बे में चढ़ने लगती है। इस डिब्बे में से एक बाबू साहब उतर रहे हैं जो उसे रोकते हैं कि वह इस सेकंड कलास

के डिब्बे में ना चढ़े।

यह बाबू साहब अंग्रेजी राज्य के अधीन काम करते हैं। बड़े रौब–दाब वाले, बढ़िया अंग्रेजी लिबास में हाथ में हंटर लिये हैं। स्टेशन मास्टर से हुई उनकी मुलाकात तथा बातचीत से पता लगता है कि वह कोई सरकारी अधिकारी हैं जो उस इलाके में कारिन्दों द्वारा मचायी गड़बड़ की जाँच–पड़ताल करने आए हैं। अंग्रेजी काठी से सजे घोड़े पर बैठकर वह कुसुमपुर नामक इलाके की ओर चल पड़ते हैं। शाम का समय है। ग्रामीण लोग कंधों पर हल रखे घरों की तरफ लौट रहे हैं। एक बड़े से वृक्ष पर झूला पड़ा है जिस पर चार स्त्रियां झूला झूल रही हैं और मधुर गीत गा रही है–''अबकी सावन सइयां घर रहु रे'' उनका यह सुन्दर मीठा गीत सुरीली कोयल के स्वर से भी मधुर है। मोहनलाल घोड़ा रोककर उनके पास पहुंचते हैं। उन्हें इस वेश में देख कर स्त्रियां घबरा जाती हैं। मोहन बाबू उनसे कुसुमपुर का रास्ता पूछते हैं। इनमें से एक प्रौढ़ा उसे एक तरफ इशारा करके कुसुमपुर का रास्ता बताती है। मोहन उस रास्ते पर चल पड़े। अचानक तेज वर्षा होने लगी और अंधकार भी बढ़ गया। उन्हें लगा कि वह रास्ता भूल गए हैं। भटकते हुए वह एक खेत के पास पहुँचे जिसमें एक मचान बना हुआ था जिस पर कुछ बच्चे बैठे शोर मचा रहे थे पास में एक कच्चा मकान भी था। मोहन बाबू चुपचाप खड़े इस दृश्य को देखते रहे। रात्रि बढ़ रही थी और उन्हें न कोई रास्ता दिखाई दे रहा था और न ही रहने का कोई ठिकाना था।

खेत के पास बने कच्चे मकान में से एक गरीब बालिका आंचल की आड़ में एक दीया ले कर बाहर आती दिखाई दी। पन्द्रह वर्ष की यह बालिका बहुत दीन और दरिद्र दिखाई पड़ती थी परन्तु दीये की रोशनी में उसका सौन्दर्य प्रकाशित हो रहा था। मोहनलाल ने उससे कुसुमपुर का रास्ता पूछा तो वह भयभीत हो उठी और बोली कि उसे नहीं पता। उसने बताया कि वह मचान पर लड़कों के साथ बैठे अपने भाई को खाना खिलाने जा रही है। उसकी मां कुसुमपुर का रास्ता जानती होगी। वह अभी वापिस आकर मोहन बाबू को अपनी माँ से मिलवा देगी। बालिका उसे माता के पास लेकर गयी। मोहनबाबू उस स्त्री की शोभा एवं गौरवपूर्ण व्यक्तित्व को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए। मोहनबाबू के पूछने पर कि कुसुमपुर की तरफ कौन सा मार्ग जाता है वह स्त्री विचलित हो उठी। उसकी आँखों में आँसू आ गए। यह देखकर मोहन बाबू व्याकुल हो उठे और स्त्री से विनयपूर्वक पूछने लगे कि इसका कारण क्या है। पहले तो वह स्त्री राजी नहीं हुई पर मोहनलाल के बार–बार कहने पर उसने अपने दुख की कहानी सुनाई।

स्त्री ने बताया कि उसके पति इस प्रान्त के मालिक थे और उच्चवंश से सम्बन्ध रखते थे। कुसुमपुर में उनकी प्रधान जमींदारी थी। किसी कारणवश उन्होंने एक बार कुन्दनलाल नामक व्यक्ति से कुछ ऋण लिया और रेहननामा लिखवा लिया। कुछ समय बाद जब उसका पति पैसा लौटाने गया तो कुंदनलाल ने मित्रता दिखाते हुए पैसा न लेकर कह दिया कि कुछ दिन बाद दे देना उसे कोई जल्दी नहीं है। कुछ दिन बाद कुंदनलाल ने बिना उन्हें बताये उन का इलाका बेच दिया। जब उनके पति को पता लगा तो सदमे से उनकी मृत्यु हो गयी। इसके बाद स्त्री ने वह गांव छोड़ दिया। स्त्री ने मोहन से बताया कि अब उसने इस गाँव के जमींदार से कुछ भूमि सामान्य कर पर ली है और उसी से जीविका कमाकर वह अपनी संतान का पालन पोषण कर रही है। स्त्री की कहानी सुनकर मोहन को बहुत दुख हुआ। कुछ देर विश्राम करने के बाद वह वहां से कुसुमपुर की ओर चल पड़े। वह बहुत उदास और दुखी थे क्योंकि जिस कुंदनलाल के अन्याय के कारण उस निरीह स्त्री का पति छिन गया, उसके बच्चों का पिता नहीं रहा और उनकी जमींदारी भी नहीं रही, वह मोहन के ही पिता थे।

इस कहानी का विषय बहुत संक्षिप्त है परन्तु बहुत संवेदनशील है। किसी व्यक्ति के जीवन की व्यथा एवं निराशा को समझकर उसके लिए दुखी होना एक गंभीर स्थिति है। ऐसी स्थिति में हम दूसरों की मदद करने

को तैयार हो जाते हैं। मोहन को स्त्री के साथ सहानुभूति है उसकी दुखद कहानी सुनकर वह व्यथित हो उठता है पर वह कुछ नहीं कर सका क्योंकि वह मजबूर है। एक तरफ एक दुखिया स्त्री है और दूसरी ओर मोहन के पिता। वह ऐसी स्थिति में स्त्री के लिए कुछ भी नहीं कर पाता। वह अपने पिता के अन्याय एवं कुकर्म के लिए बहुत दुखी है पर अवश है। वह स्त्री की दीनता के साथ साथ उसके अभिमान से भी आकर्षित है। दूसरी ओर अपने पिता के कारण स्वयं को अपमानित महसूस कर रहा है।

2. पात्र तथा चरित्र–चित्रण : पात्रों के चरित्र का चित्रण कहानी का एक महत्त्वपूर्ण अंग होता है जिसके माध्यम से लेखक विषय वस्तु को प्रस्तुत करता है और अपने विचारों को भी प्रस्तुत करता है। इस कहानी में मुख्य पात्र मोहनलाल एवं बालिका की माँ है। कहानी के आरंभ में ही मोहन बाबू का परिचय दे दिया गया है जो अंग्रेजी शासन के अधीन कोई सरकारी नौकरी करता है। उसका व्यक्तित्व भी आकर्षक है और वह रौब वाला है। लेखक के शब्दों में – ''विलायती पिक का वृचिस पहने, बूट चढ़ाए, हंटिग कोट, धानी रंग का साफा, अंग्रेजी हिन्दुस्तानी का महा–उन्नत ललाट–उसकी आभा को बढ़ा रहे हैं'' मोहन इस इलाके में सबको पहचानते है और लोग भी उससे मित्रता रखते हैं। उसकी बातों से स्पष्ट होता है कि वह अच्छे स्वभाव वाला नवयुवक है। रेलगाड़ी के जिस डिब्बे से वह उतरा है उसमें चढ़ती हुई एक महिला को वह बताता है कि वह गल्त डिब्बे में चढ़ रही है ताकि वह परेशानी से बच सके। वह एक इंस्पेक्टर है और इलाके की जाँच–पड़ताल के लिए जा रहा है।

मोहन भावुक प्रवृत्ति का है। गाँव की तरफ जाते हुए वह झूला झूलती हुई स्त्रियों के गीत से प्रभावित होता है। उनके पास जाकर बड़ी शालीनता से बात करता है। वह सरकारी अधिकारी है परन्तु उसमें अहंकार नहीं है। वह पूछता है–''भद्रे। यहाँ से कुसुमपुर कितनी दूर है? और किधर से जाना होगा? गाँव की एक बालिका से वह बड़े संकोच से बात करते हैं क्योंकि वह ग्रामीण लोगों के तौर–तरीकों को समझते हैं। वहां किसी की लड़की से सीधा बात करना ठीक नहीं समझा जाता। उनके पास और कोई उपाय नहीं था तो उन्होंने रूखेपन से पूछा कि कुसुमपुर का रास्ता कौन सा है। मोहन की भव्य मूर्ति को देखकर बालिका सहम जाती है तो वह सहज हो जाता है। वह बालिका के भेलेपन पर मुग्ध हो जाता है और उसे उसकी माँ से मिलवाने को कहता है।

मोहन विनयशील है। वह बालिका की माता को सम्मान–पूर्वक मिलता है उसके सामने झुककर प्रणाम करता है। जब वह कुसुमपुर का नाम सुन कर व्याकुल हो उठती है तो मोहन उससे उसके दुख का कारण पूछता है। वह उस निर्धन दीन स्त्री के दुख का कारण जानना चाहता है। स्त्री के मना करने पर भी वह विनय करता है कि वह उसकी कहानी सुनना चाहता है। फूस की चटाई पर बैठकर उनका दिया शर्बत पीकर वह स्त्री से उसकी कहानी सुनता है। किसी बड़े अधिकारी द्वारा एक गरीब स्त्री के दुख की कथा सुनना उसकी विनयशीलता का प्रमाण है। वह एक शिष्ट व्यक्ति है। अपने पिता की गलत नीतियों को जान कर भी वह चुप रहता है। स्त्री के सामने इस रहस्य को नहीं खोलता कि कुंदनलाल उसके पिता हैं। उसके मुख पर लज्जा और विषाद की रेखाएं उभरती है, वह बहुत दुखी है पर पिता के सम्मान के प्रति सजग है। मोहन का यह व्यवहार उसके सभ्य एवं शिष्ट होने का प्रमाण है। वह हृदय से भावुक और दयालु है पर सामाजिक शिष्टाचार के प्रति जागरूक है। कुल मिलाकर वह अच्छे चरित्र वाला है।

मोहन अपनी ड्यूटी के प्रति भी ईमानदार है। वह अपने कार्य के प्रति सेवाभाव रखता है। स्टेशन मास्टर से बात करते समय वह बेतुकी बातों में समय व्यर्थ नहीं करता। शिक्षित नवयुवक मोहन सभी औपचारिक बातें समझता है। स्टेशन मास्टर से शेकहैंड करके उसे गुडईवनिंग बोलता हुआ सीधा घोड़े पर चढ़कर अपनी ड्यूटी पर रवाना हो जाता है। वर्षा में भीगते हुए वह बिना रूके कुसुमपुर की ओर बढ़ता है जहां उसे कारिन्दों

द्वारा फैलायी गड़बड़ को देखना है। गहरी रात्रि में कुछ पल रूककर वह फिर अपनी मंजिल की ओर बढ़ने लगता है। मोहन के माध्यम से प्रसाद ने एक कर्त्तव्यपरायण, भावुक एवं अनुशासित चरित्र की रूपरेखा हमारे सामने रखी है।

इस कहानी की दूसरी मुख्य पात्र गरीब स्त्री है। इसका व्यक्तित्व अति सुन्दर एवं गरिमापूर्ण है। लेखक के शब्दों में –''एक स्त्री मोहनलाल को दिखाई पड़ी, जिसकी अंगप्रभा स्वर्ण–तुला थी, तेजोमय मुखमंडल तथा ईषत् उन्नत अधर अभिमान से भरे हुए थे।'' पाठक को सहज ही इस बात का ज्ञान हो जाता है कि यह स्त्री रूपवती है। उसकी सरल गंभीर तेजोमय मूर्ति को देखकर मोहनलाल विनयपूर्वक झुककर उसे प्रणाम करता है। इस स्त्री में स्वाभिमान का भाव है। कुसुमपुर का नाम सुन कर उसके नेत्रों में आँसू आ जाते हैं और वह पूरे आत्मसम्मान के साथ अपनी दुख गाथा सुनाती है। पति की जमींदारी समाप्त होने पर वह कुसुमपुर को छोड़ देती है। पति की मृत्यु के के बाद वह दूसरे गाँव के एक नेक जमींदार से कर पर भूमि लेकर अपनी आजीविका कमाती है। उसके हृदय में कुंदनलाल के प्रति घृणा का भाव है। उसका नाम सुन कर उसका चेहरा क्रोध एवं घृणा से लाल हो उठता है। पर वह आत्मविश्वास एवं आत्म–सम्मान के साथ जीने का साहस रखती है। लेखक ने बड़े सुन्दर शब्दों में लिखा है–''कुसुमपुर का नाम सुनते ही स्त्री का मुखमंडल आरक्तिम हो गया और उसके नेत्र से दो बूँद आँसू निकल आए। वे अश्रु करुणा के नहीं, किन्तु अभिमान के थे।''

इस पात्र के माध्यम से प्रसाद ने एक आदर्श भारतीय नारी को प्रस्तुत किया है जो पति के शत्रु के घोर घृणा करती है, पति की जमींदारी समाप्त होने पर और उसकी मृत्यु होने पर एक आदर्श माता के रूप में अपने बच्चों का पालन पोषण करती है। वह मेहनत मजदूरी करके गरीबी में भी आत्म–सम्मान को जीवित रखती है।

इस कहानी के गौण पात्रों में रेलवे स्टेशन का स्टेशन मास्टर, सिग्नलर, मुसाफिर, गाँव की स्त्रियां, पुरुष तथा बच्चे आते हैं। मोहन लाल जब स्त्रियों से कुसुमपुर का रास्ता पूछते हैं तो एक प्रौढ़ा उसके द्वारा कहे गये 'भद्रे' शब्द का अर्थ नहीं समझ पाती पर उसे मार्ग बता देती है। जब वह बालिका से पूछता है तो वह सहम जाती है। प्रसाद ने बड़े स्वाभाविक ढंग से इस स्थिति का वर्णन किया है–''बालिका इस भव्य मूर्ति को देखकर डरी, पर साहस के साथ बोली–मैं नहीं जानती। ऐसे सरल नेत्र–संचालन से इंगित करके उसने ये शब्द कहे कि युवक को क्रोध के स्थान पर हँसी आ गई और कहने लगा–तो जो जानता हो, मुझे बतलाओ मैं उससे पूछ लूँगा।'' बालिका बहुत निरीह है परन्तु माता वाला आत्मविश्वास उसमें भी है।

3. संवाद : संवाद, कथोपकथन या वार्तालाप कहानी का महत्त्वपूर्ण अंग है। पात्रों की परस्पर बातचीत से कहानी का स्वरूप स्पष्ट होता है। कहानी में लेखक जो कुछ कहना चाहता है उसे पात्रों के मुँह से ही कहलवाता है। इस कहानी में पात्र बहुत थोड़े हैं और उसी के आधार पर संवादों की संख्या भी कम है। मोहन लाल के संवाद थोड़े हैं। सबसे लम्बा संवाद स्त्री का है जो अपनी कहानी सुना रही है। उसके द्वारा कही बात कहानी की प्रमुख विषय–वस्तु को स्पष्ट करती है और पाठक को मूल कथा का ज्ञान सहज ही हो जाता है। कहानी के संवाद बहुत छोटे हैं पर उनसे कहानी की विषय–वस्तु शीघ्र ही स्पष्ट हो जाती है। जैसे–स्टेशन मास्टर और मोहन लाल के संवाद–

स्टेशन मास्टर – 'आप इस वक्त कहां से आ रहे हैं?' मोहन

मोहन – 'कारिन्दों ने इलाके में बड़ा गड़बड़ मचा रक्खा है, इसलिए मैं कुसुमपुर–जोकि हमारा इलाका है–इंस्पेकशन के लिए जा रहा हूँ।'

स्टेशन मास्टर – फिर कब पलटिएगा?

मोहन – दो रोज में। अच्छा, गुड इवनिंग।

जब मोहन स्त्रियों के झुंड के पास जाकर कुसुमपुर का रास्ता पूछा तो उसने बहुत शिष्ट भाषा में बात की–'भद्रे! यहां से कुसुमपुर कितनी दूर है? और किधर से जाना होगा।' एक प्रौढ़ महिला उत्तर देती हैं – ''इहाँ से डेढ़ कोस तो बाय, इहै पैंड़वा जाई।'' इस संवाद से स्पष्ट होता है कि मोहन शिक्षित नवयुवक है और महिला गाँव की साधारण अशिक्षित स्त्री है। उसकी भाषा में उस गांव की बोली का प्रयोग है। आगे जाकर जब मोहन बालिका से रास्ता पूछता है तो वह नहीं बता पाती। मोहन कहता है–'तो जो जानता हो, मुझे बतलाओ मैं उससे पूछ लूंगा।' बालिका–'हमारी माता जानती होंगी। चलिए, मैं लिवा चलती हूँ।'
जब बालिका मोहन को माँ के पास ले जाती है तो वह पूछती है–'बेटा! कहां से आते हो?'
मोहन – 'मैं कुसुमपुर जाता था, किन्तु रास्ता भूल गया।'
इसके बाद मोहन को अपने दुख की कहानी सुनाती है। जिससे कथा का पूरा ज्ञान पाठक को हो जाता है। एक जमींदार कुंदनलाल द्वारा किये धोखे के कारण इस स्त्री का संसार उजड़ जाता है। वह करुणामय शब्दों में कहती है–''फिर हमारे पति के हृदय में, उस इलाके के इस भांति निकल जाने के कारण, बहुत चोट पहुंची और इसी से उनकी मृत्यु हो गयी।'' महिला के ये संवाद कहानी के मूल विषय को प्रस्तुत करते हैं।

4. वातावरण : कहानी में वातावरण या परिवेश का भी महत्व होता है। इस कहानी में ग्रामीण वातावरण का चित्रण है। कहानी एक गांव के रेलवे स्टेशन के वर्णन से शुरू होती है। लेखक ने संध्या के समय का वर्णन किया है जब हल्की वर्षा हो रही है। ऐसे वातावरण में एक रेलगाड़ी स्टेशन पर आती है। इस वातावरण का बड़ा सजीव वर्णन करते हुए लिखा है–
'श्रावण मास की संध्या भी कैसी मनोहारिणी होती है! मेघमाला विभूषित गगन की छाया सघन रसाल–कानन में पड़ रही है। अंधियारी धीरे–धीरे अपना अधिकार पूर्व–गगन में जमाती हुई, सुशासनकारिणी महाराणी के समान, विहंग प्रजागण को सुख–निकेतन में शयन करने की आज्ञा दे रही है......ग्राम्य स्टेशन पर कहीं एक–दो दीपालोक दिखाई पड़ता है।...............बूंदियां धीरे–धीरे गिर रही हैं..................पवन की सनसनाहट के साथ रेलगाड़ी का शब्द सुनाई पड़ने लगा।...........महादैत्य के लाल–लाल नेत्रों के समान अंजन गिरिनिभ इंजन का अग्रस्थित रक्तआलोक दिखाई देने लगा। पागलों की तरह बड़बड़ाती हुई अपनी धुन की पक्की रेलगाड़ी स्टेशन पर पहुंच गई।''
लेखक ने ग्राम क्षेत्र का भी मनोहारी चित्रण का सुमधुर संगीत धीरे–धीरे आम्रकानन में से निकल कर चारों ओर गूंज रहा है। अंधकार गगन में जुगनू–तारे चमक–चमक कर चित्त को चंचल कर रहे हैं। ग्रामीण लोग अपना हल कंधे पर रख कर, बिरहा गाते हुए, बैलों की जोड़ी के साथ, घर की ओर प्रत्यावर्त्तन कर रहे हैं। एक विशाल तरुवर की शाखा में झूला पड़ा हुआ है, उस पर चार महिलाएं बैठी हैं, और पचासों उसको घेरकर गाती हुई घूम रही है। झूले के पेंग के साथ 'अबकी सावन सइयाँ घर रहु रे' की सुरीली पचासों कोकिल–कंठ से निकली हुई तान पशुगणों को भी मोहित कर रही है। बालिकाएं स्वच्छन्द भाव से क्रीड़ा कर रही है।''
ग्रामीण वातावरण का वर्णन करते समय प्रसाद ने ग्रामीण स्त्रियों के सौन्दर्य के भी सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं। उनके शब्दों में – ''बालिका की अवस्था 15 वर्ष की है। आलोक से उसका अंग अंधकार–घन में विद्युल्लखा की तरह चमक रहा है। यद्यपि दरिद्रता ने उसे मलिन कर रखा है पर ईश्वरीय सुषमा उसके कोमल अंग पर अपना निवास किए हुए है।'' बालिका द्वारा मिट्टी के बर्तन से कुछ वस्तु निकाल कर जल में डालना, मोहन का फूस की चटाई पर बैठना आदि ग्रामीण वातावरण को प्रकाशित करते हैं। खेत में बनी मचान पर बालकों को बैठना आदि भी इसी प्रकार के वातावरण को स्पष्ट करते हैं।

5. भाषा : प्रसाद अपनी रचनाओं में शुद्ध साहित्यिक एवं संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग करते हैं। इस कहानी की भाषा भी सरल न होकर कलिष्ट है। किसी भी स्थिति का मनोहारी वर्णन करना प्रसाद की

विशेषता है। इस कहानी में एक ओर ग्राम और रेलवे स्टेशन का चित्रण है, दूसरी ओर प्राकृतिक शोभा के चित्रण में सुन्दर भाषा का प्रयोग है – ''बूंदियां धीरे–धीरे गिर रही है, जो जूही की कलियों को आर्द्र करके पवन को भी शीतल कर रही हैं। थोड़े समय में वर्षा बंद हो गयी। अंधकार–रूपी अंजन के अग्रभाग–स्थित आलोक के समान चतुर्दशी की लालिमा को लिए हुए चंद्रदेव प्राची में हरे–हरे तरुवरों की आड़ में से अपनी किरण–प्रभा दिखाने लगे।''

ग्राम के परिवेश का चित्रण बड़ी सुन्दर भाषा का प्रयोग किया है–''बाबू मोहनलाल उसी पगडंडी से चले। चलते–चलते उन्हें भ्रम हो गया, और वह अपनी छावनी का पथ छोड़कर दूसरे मार्ग से जाने लगे। मेघ घिर आए, जल वेग से बरसने लगा, अंधकार और घना हो गया। भटकते–भटकते वह एक खेत के समीप पहुंचे, वहां उस हरे–भरे खेत में एक ऊँचा और बड़ा मचान था, जो कि फूस से छाया हुआ था, और समीप ही में एक छोटा–सा कच्चा मकान था। उस मचान पर बालक और बालिकाएं बैठी हुई कोलाहल मचा रही थी।''

कहानी के मूल विषय को प्रसाद ने बड़ी संक्षिप्त शब्दावली में व्यक्त कर दिया है। स्त्री द्वारा बतायी गयी दुख–गाथा में उन्होंने बड़ी प्रभावपूर्ण एवं अर्थपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है। यह प्रयोग इतना अद्‌भुत है कि कुछ ही पंक्तियां पढ़कर पाठक कथावस्तु को समझ लेता है। कहानी में आया अंतिम और संक्षिप्त गद्यांश अत्यन्त प्रभावपूर्ण है–

''उनके मुख पर विषाद और लज्जा ने अधिकार कर लिया था। कारण यह था कि स्त्री की जमींदारी हरण करने वाले तथा उसके प्राणप्रिय पति से उसे विच्छेद कराकर इस भांति दुःख देने वाले कुंदनलाल मोहनलाल के ही पिता थे।'' इस तरह की भाषा का प्रयोग करुणा प्रसाद की महत्वपूर्ण विशेषता है। इस कहानी में वर्णनात्मक शैली का सुंदर प्रयोग है।

6. उद्देश्य : प्रत्येक रचना पाठक के सामने कोई न कोई संदेश अवश्य रखती है। लेखक का उद्देश्य कथा के माध्यम से पाठक को कोई संदेश देना होता है, तभी उस रचना की उपयोगिता सिद्ध होती है। इस कहानी का मुख्य उद्देश्य ऐसे व्यक्ति की मनोस्थिति को प्रस्तुत करना है जो स्वयं सुशील स्वभाव का है परन्तु पिता द्वारा किए गए अन्याय के कारण उसे लज्जा का अनुभव होता है। मोहनलाल को एक गरीब बालिका और उसकी माता के प्रति सहानुभूति है। वह एक सरकारी अधिकारी होने के नाते इनके परिवार की सहायता भी कर सकता है पर यह जानकर कि इस स्त्री की दुर्दशा का कारण उसका अपना पिता है तो वह पूरी तरह टूट जाता है। कहा जाता है कि माता–पिता के कुकर्मों का फल संतान को भुगतना पड़ता है। मोहनलाल अनुशासित, कर्त्तव्यपरायण एवं परिश्रमी है। उसे गांव के भोले लोगों से लगाव है। वह उनकी रक्षा के लिए उपद्रवी लोगों को ठीक करना चाहता है। रास्ते में एक गरीब स्त्री की व्यथा सुनने के लिए उसकी फूस की चटाई पर बैठ जाता है। उसके मुख से अपने पिता द्वारा किये अन्याय को जानकर वह निराश हो जाता है और विषाद तथा लज्जा से घिर जाता है।

लेखक का उद्देश्य ग्रामीण परिवेश में होने वाले जमीनों के झगड़ों–झमेलों का वर्णन करना भी है। गांव के महाजन धोखे से लोगों की जमीन हड़प लेते हैं जिसके दुष्परिणामों का वर्णन किया गया है। महाजन कुंदनलाल की धोखेबाजी के कारण महिला का घर बर्बाद हो गया और पति की मृत्यु हो गयी। कुंदनलाल की जमींदारी झूठ और फरेब पर चलती है जो दूसरों के साथ अन्याय करता है। उसी का बेटा दयालु स्वभाव का है और पिता का यह गल्त कार्य उसे निराश करता है।

इस कहानी में प्रसाद ने गांव की स्त्रियों के सामान्य गुणों की चर्चा भी की है। रेलवे स्टेशन के दृश्य का वर्णन करते हुए वह लिखते हैं – 'एक स्त्री की ओर देखकर फाटक के बाहर खड़ी हुई दो औरतें–जो उसकी सहेली मालूम देती हैं–रो रही हैं, और वह स्त्री एक मनुष्य के साथ रेल में बैठने को उद्यत है। उनकी क्रंदन–ध्वनि

से वह स्त्री दीन भाव से उनकी ओर देखती हुई, सेकंड कलास की गाड़ी में चढ़ने लगी।'' प्रसाद नारी के प्रति सदैव दयालु भाव रखते हैं। इस कहानी में उन्होंने ग्रामीण स्त्रियों की सादगी को विशेष रूप से उभारा है। ये स्त्रियां मोहनलाल को देखकर घबरा जाती हैं। उनमें से एक प्रौढ़ा स्त्री मोहनलाल द्वारा कहे शब्द 'भद्रे' को समझ नहीं पाती पर उसे लगता है कि यह शब्द परिहास के लिए नहीं है।

कुल मिलाकर यह एक सुन्दर कहानी है। लेखक ने इसका नामकरण 'ग्राम' किया है। कहानी की पूरी कथावस्तु का सम्बन्ध ग्रामीण वातावरण से है–गांव की प्राकृतिक सुन्दरता, छोटा सा रेलवे स्टेशन, अपनी गठरियां संभालते मुसाफिर, खेतों में पड़े झूले और झूला झूलती, गीत गाते स्त्रियां, बिरहा गाते, बैलों की जोड़ी के साथ घर लौटते किसान, मचानों पर खेलते बच्चे, घरों में पड़े मिट्टी के बर्तन, देसी शर्बत, फूस की चटाईयां, फूस मिट्टी के कच्चे घर, मैले वस्त्रों में लिपटी सुन्दर स्त्रियां और जमींदारों के छलकपट आदि सभी विषय ग्रामीण जीवन से संबंध रखते हैं। कहानी को पढ़ते समय ग्राम जीवन पाठकों के सामने सहज ही सजीव हो जाता है। वास्तव में यह एक सुन्दर कहानी है जो पाठक को ग्रामीण परिवेश के प्रति जानकारी देने में सफल कही जा सकती है।

2.4.5 लघु प्रश्नोत्तर :

प्र.1 जयशंकर प्रसाद की किन्हीं चार नाट्य रचनाओं के नाम लिखो।

उत्तर : चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु, ध्रुवस्वामिनी

प्र.2 प्रसाद किस प्रकार के कवि हैं?

उत्तर : छायावादी कवि हैं। जो प्रेम और सौन्दर्य के उपासक, दार्शनिक, गहन विचारक, तत्त्वदर्शी और युग प्रर्वत्तक के रूप में प्रसिद्ध हैं।

प्र.3 कहानी के तत्त्व कौन से हैं?

उत्तर : कथावस्तु, चरित्र चित्रण, संवाद, वातावरण, भाषा शैली, उद्देश्य।

प्र.4 जयशंकर प्रसाद की पहली कहानी कौन सी है?

उत्तर : 'ग्राम'। इस कहानी में लेखक ने ग्रामीण संस्कृति का वर्णन किया है।

प्र.5 कथावस्तु क्या होती है?

उत्तर : घटनाओं के क्रमिक विकास को कथावस्तु कहते हैं।

6. 'ग्राम' कहानी के प्रमुख पात्र के विषय में लिखें।
7. 'ग्राम' कहानी की कथावस्तु को स्पष्ट करें।
8. संवाद किसे कहते हैं?
9. परिवेश का कहानी में क्या महत्त्व होता है?
10. ग्राम कहानी के उद्देश्य को स्पष्ट करें।

2.4.6 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. जयशंकर प्रसाद की साहित्यिक विशेषतां लिखें।
2. जयशंकर प्रसाद के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालें।
3. कहानी के तत्वों का परिचय दीजिए।
4. 'ग्राम' कहानी का उद्देश्य बताते हुए सार लिखें।
5. 'ग्राम' कहानी की तात्विक समीक्षा करें।
6. 'ग्राम' कहानी का सार लिखें।
7. 'ग्राम' कहानी के प्रमुख पात्र के विषय में लिखें।

पाठ संख्या : 2.5 **लेखिका : डॉ0 सुरिन्द्रपाल कौर**

आकाशदीप, कहानी विवेचन : आंधी

रूपरेखा :

2.5.0 उद्देश्य
2.5.1 भूमिका
2.5.2 'आकाशदीप' : तात्विक समीक्षा
2.5.3 कहानी आंधी
  2.5.3.1 कथावस्तु
  2.5.3.2 पात्र तथा चरित्र चित्रण
  2.5.3.3 उद्देश्य
2.5.4 सारांश
2.5.5 शब्दावली
2.5.6 लघु प्रश्न
2.5.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.5.0 उद्देश्य :

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् आकाशदीप कहानी के मूल उद्देश्य को जान पाएंगे। कहानी के तत्त्वों के आधार पर 'आकाशदीप' कहानी को समझने में सक्षम हो पाएंगे।

2.5.1 भूमिका :

यह प्रसाद की अति प्रसिद्ध कहानी है। इसमें प्रेम का विचित्र रूप प्रस्तुत करते हुए लेखक ने कर्त्तव्यपरायणता एवं त्याग की अनूठी कथा हमारे सामने रखी है। जीवन में किसी लक्ष्य को प्राप्त करके मानसिक शांति प्राप्त करने के लिए बलिदान करना महान कार्य है। इसके लिए मनोबल एवं आत्म–विश्वास की आवश्यकता होती है जिसके आधार पर त्याग भाव उत्पन्न होता है। इस कहानी का विषय अत्यन्त आकर्षक एवं रुचिकर हैं। कहानी के आदि से अंत तक पाठक विस्मय और रोमांच से प्रभावित होता है। यहां हम इस कहानी का तात्विक विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं।

2.5.2 कथावस्तु : कथा के आरंभ में यह ज्ञात होता है कि एक नाव पर दस नाविक और एक प्रहरी है। ये नाविक बंदी हैं। आंधी और तूफान के शोर में रात्रि के समय दो नाविक एक दूसरे को आजाद कर लेते हैं। मुक्त होकर दोनों प्रसन्न होकर एक दूसरे के गले मिलते हैं। एक का नाम बुधगुप्त है और दूसरी एक स्त्री चंपा है। समुद्र में आंधी–तूफान के कारण नाव में सब कुछ अस्त–व्यस्त हो जाता है। सारे बंदी मुक्त हो जाते हैं। नायक बुधगुप्त से पूछता है कि उसे किसने मुक्त किया है। वह उसे फिर से बंदी बनाना चाहता है। बुधगुप्त कहता है कि वह अब इस जगह का स्वामी बनेगा। दोनों में द्वन्द्व–युद्ध होता है जिसमें से बुधगुप्त विजयी होता है। इसके बाद ये लोग बालीद्वीप से दूर एक नवीन द्वीप में पहुंचते हैं। वणिक मणिभद्र ने इन्हें बंदी बनाकर नाव में रखा था। अब ये सारे आजाद होकर नए द्वीप पर चले गए हैं जिसे बुधगुप्त चंपाद्वीप कहते हैं।

कहानी में चंपा के विषय में परिचय देते हुए लेखक ने बताया है कि वह चंपा नगरी की क्षत्रिय बालिका है। उसके पिता मणिभद्र के यहां प्रहरी का काम करते थे। जब बुधगुप्त ने आक्रमण किया तो चंपा के पिता ने सात दस्युओं को मार कर जलसमाधि ली थी। माता की मृत्यु बाद चंपा भी पिता के साथ समुद्र में ही रहती थी। पिता की मृत्यु के बाद चंपा अनाथ हो गयी। एक दिन मणिभद्र ने उससे एक घृणित प्रस्ताव रखा। चंपा ने उसे गालियां दीं जिसके परिणामस्वरूप उसे भी बंदी बना दिया गया। अब वह यहीं पर ही रहना चाहती है। वह अपने पिता की स्मृति में दीप जलाती है और उसे मंजूषा में रखकर ऊपर चढ़ाती है। यह आकाशदीप उसके मन को शांति देता है।

इस नए द्वीप का स्वामी बुधगुप्त है। वह वहां के लोगों से कहता है कि वे चंपा को रानी कहें। वह स्वयं भी चंपा को वहां की अधीश्वरी कहता है। उसने वहां रहकर पर्याप्त धन–ऐश्वर्य इकट्ठा कर लिया है। बाली, जावा और सुमात्रा का वाणिज्य उसके अधिकार क्षेत्र में है। वह चंपा से कहता है पिछली बातों को भूल जाए, वैरागिनी बन कर दीप न जलाया करें। वह उसे रानी बना कर रखना चाहता है और उसके साथ सुख–ऐश्वर्य भोगना चाहता है। चंपा बुधगुप्त को अपने पिता का हत्यारा मानती है। वह उससे प्रेम भी करती है पर उस पर विश्वास करने में असफल है। वह पिता के हत्यारे को क्षमा नहीं कर सकती और उसके प्रति मन में उपजी घृणा को भुला नहीं सकती। बुधगुप्त चंपा के पैर पकड़ कर विनय करता है कि वह असंख्य धनराशि लेकर चंपा के साथ अपनी जन्मभूमि भारत लौटना चाहती है परन्तु वह नहीं मानती। वह अपने जीवन में इतनी निराश हो चुकी है कि उसे दुनिया के किसी सुख–वैभव की ओर आकर्षित नहीं होती है। वह बुधगुप्त से कहती है कि वह चला जाए। वह यहीं रहकर निरीह भोले–भाले प्राणियों के दुख–दर्द बांटेगी और उनकी सेवा करेगी। वह अपने पिता की समाधि पर दीप जला कर उसी में स्वयं को जला देगी, जैसे आकाशदीप।

एक दिन बुधगुप्त वहां से चला जाता है। चंपा आजीवन वहीं रहती है और दीप स्तम्भ में दीप जलाती है। उस द्वीप के निवासी माया–ममता और स्नेह–सेवा की देवी चंपा की पूजा करते रहे। इस कहानी में अलौकिक प्रेम कथा की विलक्षण प्रस्तुति है। चंपा बुधगुप्त से प्रेम करते हुए भी उसे स्वीकार नहीं करती। वह अकेली रह कर तपस्वी का जीवन बिताती है।

2. पात्र तथा चरित्र–चित्रण : इस कहानी की मुख्य पात्र चंपा है। यह स्वभाव से विनम्र, सहनशील और बुद्धिमान है। माता–पिता के प्रति प्रेम तथा सेवाभाव इसकी विशेषता है। वह बुधगुप्त से प्रेम करती है पर माता–पिता के प्रति अपने श्रद्धाभाव को भुलाकर बुधगुप्त को अपनाने से इंकार करती है। जब बुधगुप्त नायक से द्वन्द्व–युद्ध करता हुआ घायल हो जाता है तो वह उसकी सेवा करती है–''चंपा ने युवक जलदस्यु के समीप आकर उसके क्षतों को अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करों से वेदना–विहीन कर दिया।''

चंपा एक क्षत्रिय बालिका है जो माता के देहान्त के बाद पिता के पास समुद्र पर ही रहती है क्योंकि उसके पिता नाव पर प्रहरी है। पिता के देहावसान के बाद मणिभद्र द्वारा घृणित प्रस्ताव रखने पर वह उसे गालियां सुनाती है। इस बात से उसके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। वह अच्छे चरित्र की रची है और किसी अनैतिक व्यवहार के लिए राजी नहीं होती। चाहे उसे बंदी ही बनना पड़े। जब बुधगुप्त उसे पूछता है कि मुक्त होने के बाद वह क्या करना चाहती है तो वह उत्तर देती है–''मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूंगी। वह जहां ले जाए।'' उसे अपने जीवन में इतनी निराशा मिली है कि वह किसी सुख या प्रसन्नता की इच्छा ही नहीं रखती।

चंपा अपने माता–पिता के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम रखती है। वह उनकी याद में आकाशदीप जलाती है। बुधगुप्त उसे इस काम से रोकता है तो वह कहती है–क्षीर निधिशायी अनंत की प्रसन्नता के लिए क्या दासियों से आकाशदीप जलवाऊं?'' वह बुधगुप्त से बताती है कि जब उसके पिता समुद्र में नौकरी पर जाते थे तो उसकी

माता मिट्टी का दीपक बांस की पिटारी में रखकर भागीरथी के तट पर बांस के साथ ऊँचा टांग देती थी। वह प्रार्थना किया करती थी कि उसके पथ–भ्रष्ट नाविक को ईश्वर रास्ता दिखाए और उसकी रक्षा करें। वह कहती है कि वह भी अपने वीर पिता की स्मृति में आकाशदीप जलाएगी।

बुधगुप्त चंपा से बहुत प्रेम करती है। बुधगुप्त उसे अपनी प्राणदात्री और सर्वस्व मानता है और उसे उस द्वीप की अधीश्वरी रानी कहता है। चंपा भी उसे प्रेम करती है पर उसे अपने पिता का कातिल मानती है इसलिए घृणा भी करती है–''मैं तुम्हें घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अंधेर है जलदस्यु! तुम्हें प्यार करती हूँ।'' बुधगुप्त उसे समझाता है–''मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ, चंपा! वह एक दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे।'' चंपा इस बात पर विश्वास नहीं कर पाती–''यदि मैं इसका विश्वास कर सकती। बुधगुप्त, वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय! आह! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान होते!'' बुधगुप्त के बार–बार विनय करने पर चंपा नहीं मानतीं और बुधगुप्त से कहती हैं–''मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल है, सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्वलित नहीं। सब मिला कर मेरे लिए एक शून्य है। प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ, वियवों का सुख भोगने के लिए, और मुझे, छोड़ दो इन निरीह भोले–भाले प्राणियों के दुख की सहानुभूति और सेवा के लिए।'' बुधगुप्त के पूछने पर कि वह यहां रह कर अकेली क्या करेगी, वह उत्तर देती है–''पहले विचार था कि कभी–कभी इस दीप–स्तम्भ पर से आलोक जलाकर अपने पिता की समाधि का इस जल से अन्वेषण करूंगी। किन्तु देखती हूँ, मुझे भी इसी में जलाना होगा, जैसे आकाशदीप।''

चंपा एक महान् एवं पवित्र चरित्र की स्वामिनी है। पिता की स्मृति में दीप जलाकर मन का सुख पाना चाहती है। इस सुख के सामने उसे धरती के सभी सुख–ऐश्वर्य व्यर्थ प्रतीत होते हैं। बुधगुप्त के प्रेम को जानते समझते हुए वह भी उससे बहुत प्रेम करती है पर वह इस सत्य को नहीं भुला सकती कि बुधगुप्त उसके पिता का हत्यारा है। ऐसे पुरुष के साथ वह जीवन भर नहीं रह सकती। चंपा एक आदर्श भारतीय स्त्री है जिसके लिये माता–पिता ईश्वरतुल्य पूज्य होते हैं। उन्हीं की स्मृति में वह अपना जीवन व्यतीत कर लेती है।

कहानी का दूसरा पात्र बुधगुप्त है। वह भी एक जलदस्यु है जो दूसरे जलदस्यु चंपा की सहायता से मुक्त होकर नये द्वीप पर अधिकार जमाता है। वह धन–ऐश्वर्य का स्वामी बन जाता है। वह चम्पा से प्रेम करता है परन्तु चंपा उसे अपने पिता का हत्यारा मानती है। वह चंपा को नए द्वीप की रानी कहता है और चाहता है कि चंपा सब कुछ भूल कर उसे पति रूप में स्वीकार कर ले। जब उसे पता लगता है कि चंपा मणिभद्र के यहां काम करने वाले प्रहरी की बेटी है जो उसी के हाथों मारा गया था तो उसे दुख होता है। वह बर्बर प्रवृत्ति का पुरुष है किन्तु चंपा के साथ रहते हुए उसका स्वभाव बदल गया है। लेखक के शब्दों में –''दुर्दान्त दस्यु ने देखा, अपनी महिमा के अलौकिक एक तरुण बालिका! वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नई वस्तु का पता लगा। वह थी कोमलता।''

चंपा बुधगुप्त के व्यक्तित्व से प्रभावित है और उसे प्रेम करती है। उसे नित्य दीप जलाते हुए देखकर बुधगुप्त कहता है–''हंसी आती है। तुम किसको दीप जलाकर पथ दिखलाना चाहती हो? उसको, जिसको तुमने भगवान् मान लिया है?''

चंपा–''हां, वह भी कभी भटकते हैं, भूलते हैं; नहीं तो, बुधगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते?''

बुधगुप्त चंपा से विनय करता है कि वे दोनों विवाह के बाद अनन्त धनराशि के साथ अपने देश भारत लौट जाएंगे : ''अब उससे भी अच्छे ढंग से हम लोग विचर सकते हैं। तुम मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।'' चंपा इसे स्वीकार नहीं कर पाती। वह कहती है–''तुमने दस्युवृत्ति छोड़ दी परन्तु हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ठा और ज्वलनशील है। तुम भगवान के नाम पर हंसी उड़ाते हो। मेरे आकाशदीप पर व्यंग्य कर रहे हो।........मेरे

पिता, वीर पिता की मृत्यु के निष्ठुर कारण, जलदस्यु! हट जाओ।'' वह बार–बार चंपा से विनय करता है क्योंकि वह उसका सच्चा प्रेमी है–''आह चंपा, तुम कितनी निर्दयी हो। बुधगुप्त को आज्ञा देकर तो देखो, वह क्या नहीं कर सकता। जो तुम्हारे लिये नये द्वीप की सृष्टि कर सकता है, नई प्रजा खोज सकता है, नये राज्य बना सकता है, उसकी परीक्षा ले कर तो देखो, कहो चंपा। वह कृपाण से अपना हृदय–पिंड निकाल अपने हाथों से अतंल जल में विसर्जन कर दे।''

बुधगुप्त का व्यक्तित्व आकर्षण है। चंपा के प्रति उसका प्रेम सच्चा है। वह उसके लिए अपना जीवन न्यौछावर कर सकता है परन्तु चंपा स्वयं को समझा नहीं पाती। जब बुधगुप्त उससे पूछता है कि क्या वह उस पर विश्वास नहीं कर सकती तो वह उत्तर देती है–''विश्वास? कदापि नहीं, बुधगुप्त। जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ? मैं तुम्हें घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिये मर सकती हूँ। अंधेर है जलदस्यु। मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। ''बुधगुप्त चंपा द्वारा ठुकराए जाने पर वहां से चला जाता है क्योंकि उसके शब्दों में –''यहां रहकर मैं अपने हृदय पर अधिकार रख सकूँ–इसमें संदेह है। आह! उन लहरों में मेरा विनाश हो जाएं। वह भारत लौट जाता है।

3. संवाद : इस कहानी में बहुत सुन्दर संवाद प्रस्तुत किये गए हैं जो स्थिति एवं वातावरण के अनुकूल है। कहानी की विषय वस्तु का परिचय देने में भी ये संवाद सफल हैं। कहानी का आरंभ ही संवादों से हुआ है जिससे यह ज्ञात होता है कि समुद्र में बंदी बनाए गए जलदस्यु आंधी और तूफान का लाभ उठाकर एक दूसरे को मुक्त कर लेते हैं। इनमें से एक पुरुष है बुधगुप्त और एक स्त्री है चंपा। बुधगुप्त नाविक से युद्ध करके विजयी होता है। सभी एक नये द्वीप पर पहुंचते हैं जिस पर बुधगुप्त का राज्य स्थापित हो जाता है। बुधगुप्त और चंपा इस द्वीप पर राजा और रानी की तरह रहते हैं। दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं परन्तु चंपा उसकी पत्नी बनना स्वीकार नहीं करती क्योंकि वह बुधगुप्त को अपने पिता का हत्यारा मानती है। बुधगुप्त बार–बार प्रणय–निवेदन करता है। वह उसे कहता है कि उसने उसके पिता को नहीं मारा। चंपा कहती है–''यदि मैं इसका विश्वास कर सकती। बुधगुप्त, वह दिन कितना सुंदर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय! आह! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान् होते।''

बुधगुप्त कहता है–''चंपा हम लोग जन्मभूमि–भारतवर्ष से दूर इन निरीह प्राणियों के बीच इन्द्र और शचि के समान पूजित हैं। पर न जाने कौन अभिशाप हम लोगों को अभी तक अलग किए हैं। स्मरण होता है कि वह दार्शनिकों का देश! वह महिमा की प्रतिमा! मुझे वह स्मृति नित्य प्रति आकर्षित करती हैं; परन्तु मैं क्यों नहीं जाता? जानती हो, इतना महत्त्व प्राप्त करने के बाद भी मैं कंगाल हूँ! मेरा पत्थर–सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चंद्रकांतमणि की तरह द्रवित हुआ।''

पूरी कहानी चंपा और बुधगुप्त के संवादों से विकसित हुई है। कहानी की प्रमुख घटनाएं भी इन्हीं कथोपकथन पर आधारित है। द्वीप पर एक महोत्सव है जिसमें बाँसुरी और ढोल बज रहे हैं। पंक्तियों में खड़ी वन–बालाएं फूल उछालती हुई नाच रही है। चंपा दासी जया से पूछती है–''यह क्या है जया? इतनी बालिकाएं कहां से बटोर लायी हैं?

''आज रानी का ब्याह है न? कहकर जया ने हँस दिया। चंपा बुधगुप्त से पूछती है–''क्या यह सच है?''

''यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो यह सच भी हो सकता है, चंपा! कितने वर्षों से मैं ज्वालामुखी को अपनी छाती में दबाए हूँ।''

चंपा – ''चुप रहो महानाविक! क्या मुझे निस्सहाय और कंगाल जान कर तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा?''

बुधगुप्त – ''मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ, चंपा।

बुधगुप्त चंपा से बार–बार निवेदन करता है कि वह उसे राजरानी की तरह भारत ले जाएगा पर वह उत्तर देती है–''बुधगुप्त! मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है; सब जल तरल है; सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्वलित नहीं होती। सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है, प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए, और मुझे, छोड़ दो इन निरीह भोले–भाले प्राणियों के दुख की सहानुभूति और सेवा के लिए।''

4. वातावरण : इस कहानी में प्रस्तुत वातावरण बड़ा ही विचित्र एवं मोहक है। कहानी समुद्र के वातावरण से शुरू होती है और द्वीप तक आती है। चंपा यहां पर बुधगुप्त के साथ रहती है। वन्य जाति के लोग इनके सेवकों की तरह हैं। यहां रहते हुए चंपा रोज आकाशदीप जलाती है। लेखक के शब्दों में –''शरद के धवल नक्षत्र नील गगन में झलमला रहे हैं। चन्द्र की उज्जवल विजय पर अंतरिक्ष में शरदलक्ष्मी ने आर्शीवाद के फूलों और खीलों को बिखेर दिया। चम्पा के एक उच्चसौध पर बैठी हुई तरुणी चंपा दीपक जला रही है।'' एक द्वीप और समुद्रीय क्षेत्र के वातावरण का सुन्दर वर्णन करते हुए लेखक ने बड़े सुन्दर शब्दों का प्रयोग किया है–''सामने जल–राशि का रजग श्रृंगार था। वरुण बालिकाओं के लिए लहरों से हीरे और नीलम की क्रीड़ा शैल–मालाएं बन रही थीं और वे मायाविनी छलनाएं–अपनी हँसी का कलनाद छोड़कर छिप जाती थी। दूर–दूर से धीवरों का वंशी झनकार उनके संगीत–सा मुखरित होता था। चंपा ने देखा कि तरल संकुल जलराशि में उसके कंडील का प्रतिबिम्ब अस्त व्यस्त था।''

चंपा द्वीप पर एक महोत्सव मनाया जाता है जिसका प्रसाद ने बड़ा मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है–''चंपा के दूसरे भाग में एक मनोरम शैलमाला थी। वह बहुत दूर तक सिंधु–जल में निमग्न थी। सागर का चंचल जल उस पर उछलता हुआ उसे छिपाए था। आज उसी शैलमाला पर चंपा के आदि–निवासियों का समारोह था।''

चंपा से निवेदन करने के बाद निराश होकर बुधगुप्त वापिस भारत लौट जाता है। लेखक के शब्दों में–''एक दिन स्वर्ण–रहस्य के प्रभात में चंपा ने अपने दीप–स्तंभ पर से देखा–सामुद्रिक नावों की एक श्रेणी का उपकूल छोड़कर पश्चिम–उत्तर की ओर महाजल–व्याल के समान संतरण कर रही है। उसकी आंखों में आंसू बहने लगे।''

5. भाषा : इस कहानी की भाषा अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं विषयानुकूल है। लेखक ने बहुत सुन्दर भाषा में कहानी का आरंभ किया है–''समुद्र में हिलोरे उठने लगीं। दोनों बंदी आपस में टकराने लगे। पहले बंदी ने अपने को स्वतंत्र कर लिया। दूसरे का बंधन खोलने का प्रयत्न करने लगा। लहरों के धक्के एक–दूसरे को स्पर्श से पुलकित कर रहे थे। मुक्ति की आशा–स्नेह का असंभावित आलिंगन। दोनों ही अंधकार में मुक्त हो गए। दूसरे बंदी ने हर्षातिरेक से उसको गले से लगा लिया।'' बुधगुप्त ने मुक्त होने के बाद नायक से द्वन्द्वयुद्ध किया और विजयी हुआ। इस द्वन्द्व का वर्णन लेखक ने अति सुन्दर शब्दों में किया है–

''भीषण घात–प्रतिघात आरंभ हुआ। दोनों कुशल, दोनों त्वरित गति वाले थे। बड़ी निपुणता से बुधगुप्त ने अपना कृपाण दाँतों से पकड़कर अपने दोनों हाथ स्वतंत्र कर लिए। चंपा भय और विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गए। परन्तु बुधगुप्त ने लाघव से नायक का कृपाणवाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुंकार से दूसरा हाथ कटि में डाल, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों में बुधगुप्त का विजयी कृपाण उसके हाथों में चमक उठा। नायक की कातर आँखें प्राण–भिक्षा मांगने लगीं।''

नए द्वीप का स्वामी बनने के बाद बुधगुप्त चंपा से निवेदन करता है कि वह उससे विवाह करके उसे राजरानी बनाना चाहता है परन्तु वह नहीं मानती। लेखक ने बड़ी सुन्दर भाषा में चंपा की मनः स्थिति का वर्णन किया है–''मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूँगी। वह जहाँ ले जाए।'' चंपा की आंखें निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थी। किसी आकांक्षा के लाल डोरे न थे। धवल अपांगों में बालकों के सदृश विश्वास था।

हत्या–व्यवसायी दस्यु भी उसे देखकर कांप गया। उसके मन में एक सभ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगीं। समुद्र–वक्ष पर विलंबमयी राग–रंजित संध्या थिरकने लगी। चंपा के असंयत कुंतल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दांत दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक तरण बालिका। वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नई वस्तु का पता लगा। वह थी–कामलता।''

कहानी में अत्यन्त प्रभावपूर्ण भाषा का प्रयोग हुआ है। संध्या के समय का वर्णन करते हुए प्रसाद ने लिखा है–''निर्जन समुद्र के उपकूल में वेला से टकरा कर लहरें बिखर जाती थीं। पश्चिम का पथिक थक गया था। उसका मुख पीला पड़ गया। अपनी शांत गंभीर हलचल में जलनिधि विचार में निमग्न था। वह जैसे प्रकाश की उन्मलिन किरणों से विरक्त था।''

बुधगुप्त कठोर स्वभाव का जलदस्यु रह चुका है। वह निर्दयी है किन्तु चम्पा के सम्पर्क में रह कर उसने प्रेम एवं कोमल भावों को पहचाना। वह चंपा से अथाह प्रेम करता है। लेखक ने बड़ी सुन्दर भाषा में इसका वर्णन किया है–''चंपा! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करता। पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है। तुम न जाने कैसे एक की हुई तारिका के समान मेरे शून्य में उदित हो गई हो। आलोक की एक कोमल रेखा इस निविड़तम में मुस्कुराने लगी। पशु–बल और धन के उपासक के मन में किसी शान्त और एकांत कामना की हंसी खिलखिलाने लगी; पर मैं हंस न सका।''

6. उद्देश्य : प्रत्येक रचना का एक निश्चित उद्देश्य होता है। यह कहानी भी एक अच्छे उद्देश्य या संदेश को हमारे सामने रखती है। कहानी के आरंभ में बंदियों द्वारा मुक्त होने का प्रयास यह स्पष्ट करता है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र होकर जीना चाहता है। नाव पर बंदी बनाए गए व्यक्ति भी अवसर मिलते ही मुक्त होने का प्रयास करते हैं। मुक्त होकर जीना सभी का अधिकार है। दुष्ट, कठोर व्यक्ति दूसरों को गुलाम बनाने का प्रयास करते हैं जो घोर अन्याय है। इस सत्य की पुष्टि कहानी में उस समय भी होती है। बुधगुप्त चंपा से विवाह करना चाहता है पर चंपा कहती है–''मुझे इस बंदीगृह से मुक्त करो। अब तो बाली, जावा और सुमात्रा का वाणिज्य केवल तुम्हारे ही अधिकार में है महा–नाविक! परन्तु मुझे उन दिनों की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चंपा के उपकूल में पुष्प लादकर हम सुखी जीवन बिताते थे।'' चंपा किसी बंधन में नहीं बंधना चाहती। वह वन्य प्राणियों के साथ मुक्त घूमना चाहती है। वह बुधगुप्त से कहती है–''मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले–भाले प्राणियों के दुख की सहानुभूति और सेवा के लिए।''

कहानी का दूसरा उद्देश्य है–एक विचित्र प्रेम का प्रकाशन जिसमें प्रेम के साथ घृणा भी है। प्रेम एक कोमल भाव है और घृणा एक कठोर भाव है। इन दोनों को एक साथ नहीं रखा जा सकता है। चंपा बुधगुप्त के पौरुष, शौर्य एवं त्याग से प्रभावित है और उससे बहुत प्रेम करती है। उसके मन में यह बात पूरी तरह से बैठी हुई है कि उसके पिता की हत्या बुधगुप्त ने की थी इसलिए वह उससे घृणा भी करती है। प्रेम और घृणा में से उसे किसी एक को चुनना है। बुधगुप्त स्वयं को निर्दोष कहता है और चंपा का विश्वास जीतना चाहता है। चंपा अपने पिता की स्मृति में रोज आकाशदीप जलाती है। वह पिता के बलिदान को भूलना नहीं चाहती। बुधगुप्त के प्रति उसके मन में उपजी घृणा उसके प्रेम पर विजय प्राप्त करती है और वह कहती है–''विश्वास? कदापि नहीं, बुधगुप्त। जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ? मैं तुम्हें घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अंधेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।'' पिता के प्रति अपने स्नेह एवं श्रद्धा को न भुलाकर चंपा उसकी याद में रोज आकाशदीप जलाना चाहती है। वह बुधगुप्त के प्यार को ठुकरा देती है। लेखक का उद्देश्य चंपा के इस महान त्याग को प्रकाशित करना है जो सचमुच अद्वितीय है। इस कहानी का नामकरण 'आकाशदीप' भी इसकी विषयवस्तु के अनुसार उपयुक्त है। कुल मिला कर यह एक सुन्दर कृति है।

इस पाठ के साथ कहानी सम्बन्धी अध्ययन समाप्त होता है।

2.5.3 कहानी आंधी :

'आंधी' प्रसाद की सुन्दर कहानी है जिसमें प्रेम का विचित्र रूप प्रकट हुआ है। प्रेम की प्रस्तुति और प्रेम के पवित्र रूप की प्रशंसा प्रसाद की विशेषता है। इस कहानी में स्त्री पुरुष के प्रेम का अद्भुत रूप प्रस्तुत किया गया है जिसमें स्त्री के त्याग एवं सहनशीलता को विशेष महत्त्व प्रदान करते हुए प्रसाद ने उसके हृदय में उठने वाले आवेग का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। यहां इस कहानी का तात्विक विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा।

2.5.3.1 कथावस्तु :

कथावस्तु से अभिप्राय कहानी में व्यक्त मुख्य कथा से होता है। इस कहानी का आरंभ कथानायक द्वारा किए गए वर्णन से होता है। चंदा नदी के तट पर लगे मुचकुंद के पेड़ों के नीचे टहलना इस कथानायक का शौक हैं। इस नदी के किनारे एक गरीब स्त्री भी अपनी एक छोटी सी झोपड़ी में रहती है। इस स्त्री का नाम सथिया मुसहरिन है जिसका एक छोटा सा बेटा भी है। सथिया बहुत सीधी सादी स्त्री है जो मुचकुंद के फूल इकट्ठे करके, सेमर की रूई बीन कर और लकड़ी के गट्ठे बटोर कर बेच लेती है। एक दिन वह अचानक मर गई और उसके बेटे कल्लू को उसकी जाति वाले मुसहर ले गए। कथानायक नदी के तट पर घूमता हुआ उसे याद कर रहा है। इस नदी के किनारे कभी एक सराय थी जो अब काफी टूट चुकी थी। एक दिन कथानायक ने देखा कि उस टूटी सराय में कुछ यात्री आकर रूके हैं। ये लोग बनजारे है जो जन्म से बेघर होते हैं। इधर–उधर घूमकर रोटी रोजी कमाते हैं। इनके पास घोड़े आदि होते हैं जिन पर अपनी घर गृहस्थी को ढोते हुए ये स्थान–स्थान पर जाते हैं। ये लोग विभिन्न प्रकार की जड़ी बूटियां और मोती आदि बेचते हैं। कथानायक इन लोगों के पास पहुंच कर इन्हें देखना चाहता है। अचानक एक लड़की सिर पर रूमाल बांधे सामने आती है और पूछती है – घोड़ा लोगे बाबू? कथानायक नहीं कहता हुआ आगे बढ़ता है। लड़की पूछती है कि क्या वह पढ़ना जानता है। कथानायक उसे टालते हुए कहता है कि उसके पास चश्मा नहीं है। लड़की उसे एक चिट्ठी पढ़कर सुनाने का अनुरोध करती है। कथानायक को वह चिट्ठी पढ़नी पढ़ती है जिसे वह एक ही नजर में पढ़ लेता है पर बोल कर नहीं सुनाता। यह चिट्ठी उस लड़की लैला को किसी पुरुष द्वारा लिखी गयी है। इस पत्र में पुरुष ने लिखा है कि उसे इस तरह से पत्र नहीं लिखना चाहिए था क्योंकि वह विवाहित है। घर में उसकी अच्छी पत्नी और दो बच्चे भी हैं इसलिए वह लैला से कोई सम्बन्ध नहीं रख सकता। लैला जो कुछ चाहती है वह नहीं कर सकता इसलिए वह कभी उसका इंतजार न करे। यह पत्र पढ़ कर कथानायक लैला को सिर्फ इतना बताता है कि जिसने यह पत्र लिखा है, वह लिख रहा है कि वह किसी दिन आएगा। यह बात सुन कर लैला प्रसन्न होकर वहां से चली जाती है।

इस कहानी में कथानायक श्रीनाथ संयोगवंश पत्र लिखने वाले रामेश्वर का मित्र है और वह पत्र पढ़ते समय उसकी लिखाई भी पहचान जाता है। श्रीनाथ इस बात पर चकित है कि लैला उससे किस प्रकार परिचित है और उसके प्रति इतना अगाध प्रेम भाव क्यों रखती है। श्रीनाथ बनजारों के इस पड़ाव से घर पहुंचते है तो उन्हें रामेश्वर का पत्र प्राप्त होता है कि वह अपने परिवार सहित उनके पास कुछ समय के लिए आना चाहता हैं। श्रीनाथ सहर्ष उसे अपने पास आने का निमन्त्रण देते हैं। इस कहानी में लेखक ने एक अन्य पुरुष प्रज्ञासारथि का भी वर्णन किया है जो चंदा नदी के तट पर एक पाठशाला में रहते। यह व्यक्ति ब्रह्मचारी है और बच्चों को पढ़ाता है। सथिया मुसाहरिन के मरने के बाद उसके

बेटे कल्लू को भी इन्होंने यही पर रख कर पाला है। इन्हीं के आश्रय में रह कर कल्लू बड़ा हो गया है और होशियार भी बन गया है। प्रज्ञासारथि एक दिन श्रीनाथ प्रज्ञासारथि से मिलने जाते है तो वह कहता है कि उसका मन ब्रह्मचारी जीवन को छोड़कर गृहस्थ जीवन अपनाने की इच्छा करता है। वह श्रीनाथ से कहता है कि वह इस पाठशाला को छोड़कर जाना चाहता है। इसलिए श्रीनाथ यहां आकर रहे और पाठशाला के कार्यभार संभाले। इस पाठशाला को लोग एक पवित्र स्थान होने का सम्मान देते है जहां कभी तथागत नामक किसी धार्मिक पुरुष के चरण पड़े थे। प्रज्ञासारथि धार्मिक विचारों वाले अच्छे व्यक्ति है और सदगुणों में विश्वास रखते हैं। श्रीनाथ घर गृहस्थी के जंजाल से मुक्त रहकर अकेला जीवन जीने के आदी हैं। वह पाठशाला की जिम्मेदारी लेने से हिचकिचाते हैं। श्रीनाथ प्रज्ञासारथि को लैला के पत्र के बारे में बताते हैं और उनसे प्रश्न करते हैं कि क्या उन्हें पत्र में लिखी बात लैला को बता देनी चाहिए या नहीं। क्या उन्होंने यह बात उसे न बताकर गल्ती की हैं। प्रज्ञासारथि के अनुसार श्रीनाथ को पत्र में लिखी बातें लैला को जरूर बता देनी चाहिए थी क्योंकि कभी न कभी सच्चाई उसके सामने आएगी तो उसे दुख होगा। श्रीनाथ के मन में एक अपराध भाव उत्पन्न हो जाता है कि उसने लैला को सत्य न बता कर अच्छा नहीं किया।

कुछ समय बाद श्रीनाथ का मित्र रामेश्वर अपने परिवार सहित आ जाता है। श्रीनाथ ने पाठशाला का कार्यभार संभालने एवं वहां जाकर रहने का निर्णय ले लिया है। अपने मित्र को भी वह पाठशाला में बने घर में ठहराना चाहता है। रामेश्वर के बच्चे और पत्नी वहीं आ जाते हैं। प्रज्ञासारथि और श्रीनाथ के पास इनके आ जाने से बड़ी रौनक है। पत्नी खाना पकाती है। सब मिलजुल कर बच्चों के साथ खेलते हैं। एक दिन लैला फिर श्रीनाथ के पास आती है। उसके साथ गुल नामक एक नवयुवक भी है। श्रीनाथ को लगता है कि वह आज फिर चारयारी (चोरों को पकड़ने की सामग्री) या पुराने सिक्के आदि बेचने आयी है। पर लैला उसे फिर वही पत्र पढ़ कर सुनाने को कहती है। वह यह भी बताती है कि वह अत्यधिक प्रसन्न है कि उसका प्रेमी एक दिन अवश्य आएगा पर उसके इंतजार में थक भी गयी हैं। इस बार श्रीनाथ लैला से सच बता देता है कि इस पत्र के अनुसार उसका प्रेमी कभी वापिस नहीं आएगा। यह बात सुनते ही लैला क्रोध से तड़प उठी और उसका रूप भयानक हो गया। यह देख कर श्रीनाथ भयभीत हो उठे कि कहीं वह उन्हें कोई नुकसान न पहुंचाए। बनजारन लैला ने अपनी कमर से छुरा निकाला और क्रोध से चीखने लगी। श्रीनाथ ने उसे शान्त करने का प्रयास किया और यह भी बताया कि उसका प्रेमी विवाहित है। वह अपनी बसी हुई घर–गृहस्थी उजाड़ कर उसके साथ नहीं रह सकता। क्रोध और विद्रोह भाव में बिलकती लैला वहां से चली गयी।

कुछ समय बाद श्रीनाथ अपने मित्र के परिवार के पास गए। सेवक ने आकर सूचना दी कि बाहर कुछ लोग आए है जो प्रज्ञासारथि से मिलना चाहते हैं। वे लोग अपने साथ एक स्त्री को लाए है जिसे कोई बिमारी है। शायद वह किसी बुरी छाया के प्रभाव में आ गयी है। श्रीनाथ उन्हें देखने बाहर आते हैं तो वही लैला सामने खड़ी है। उसका सुन्दर मुख मुरझा गया है। लगता है पिछले लंबे समय से किसी भयंकर रोग से ग्रस्त है। श्रीनाथ को उसका छुरा पकड़ा हुआ रौद्र रूप याद आता है। उन्हें डर है कि उनके मित्र को कोई नुकसान न पहुंचाए।

कुछ समय बाद एक दिन फिर श्रीनाथ मित्र–परिवार से भेंट करने आते हैं। उन्होंने लैला से वायदा किया था कि उसे एक दिन रामेश्वर से अवश्य मिलवाएंगे क्योंकि वह उनके घर आया हुआ है। लैला भी उनके साथ आती है। वहां मित्र की पत्नी मालती बाजे पर पीलू गा रही होती है। संगीत की ध्वनि सुनकर लैला मतवाली हो उठती है। रामेश्वर के बेटे रंजन और मित्रा वहीं बैठे हैं। रामेश्वर मस्त होकर संगीत सुन रहा

है। प्रज्ञासारथि रामेश्वर की नन्ही बेटी कमला को गोद में लिए बैठे हैं। अचानक श्रीनाथ और लैला को देख कर मालती गाना बन्द करती है। रामेश्वर लैला को देखकर चकित रह जाते हैं पर वह बड़े स्वाभाविक ढंग से बातचीत करती है। लैला अपने गले से एक तावीज़ खोलती है जिसे रेशमी–कपड़े के बीच रख कर सीया हुआ है। उस तावीज़ में से वह वही पत्र निकाल कर रामेश्वर को देती है और कहती है कि वह उसी के मुंह से पत्र सुनना चाहती है। रामेश्वर पत्र पढ़ता है। लैला उसे पत्र फाड़ने को कहती है। लैला उसे सोने की चारपाही दिखाती है और उसके पचास रुपए लेती है। फिर उसे एक मूंगे की माला दिखाती है। बच्ची कमला उसे देखकर प्रसन्न हो जाती है। मालती माला की कीमत पूछती है पर लैला उस माला को बच्ची के गले में डालकर बिना कीमत लिए चली जाती है। कुछ दिनों बाद रामेश्वर परिवार सहित लौट जाते हैं। प्रज्ञासारथि भी अपनी गृहस्थी बसाने चले जाते हैं। श्रीनाथ पाठशाला में अकेले रह जाते हैं। साथ में कलुआ भी है। श्रीनाथ को बार बार लैला की उदास आंखें, मुरझाया चेहरा और व्यथित स्वरूप याद आता है। उन्होंने उस चेहरे से लैला के हृदय में उठने वाली गहन एवं तीव्र आंधी को देखा था। उसे भुला देना उनके लिए असंभव था। एक दिन कलुआ ने फिर उन्हें सूचना दी कि कुछ ईरानी लोग आए हैं जिनके साथ एक पगली सी स्त्री है। वे प्रज्ञासारथि को मिलना चाहते है। श्रीनाथ उस स्त्री लैला की दुर्दशा देखकर विचलित हो उठते हैं। कुछ दिन बाद बड़ी तीव्र आंधी आती है जिससे एक पेड़ टूट कर गिर जाता है। लैला इस पेड़ के नीचे दब कर मृत्यु को प्राप्त होती है। श्रीनाथ को लगता है कि उनके हृदय में भी एक आंधी उठती है जिसमें उन्हें लैला का चेहरा बिजली की तरह कौंधता दिखाई देता है।

यह स्त्री के प्रेम की अद्भुत कहानी है। वह जिस पुरुष से प्रेम करती है वह उसे अपना नहीं सकता। उसके प्रेम में दीवानी यह स्त्री स्वयं को समाप्त कर लेती है परन्तु उसकी घर गृहस्थी को खराब नहीं होने देती। अपनी आंखों से सब कुछ देख कर वह सब्र कर लेती है। चैन से जी नहीं पाती, पागल होकर मर जाती है। प्रेम का यह विचित्र रूप त्याग एवं निराशा से पूर्ण है जिसमें प्राण तिल–तिल कर जलते हैं। कथानायक प्रेम के इस अद्भुत रूप से विचलित हो उठता है और जीवन से उदासीन हो जाता है।

2.5.3.2 पात्र तथा चरित्र-चित्रण :

श्रीनाथ इस कहानी का मुख्य पात्र है जो घर–गृहस्थी से दूर रहकर एकान्त जीवन जीना चाहता है। सुबह शाम चंदा नदी के तट पर मुचकुन्द के पेड़ों के नीचे टहलना, नदी के किनारे शान्त बैठना और कभी कभी मित्र प्रज्ञासारथि के पास बैठ कर ज्ञान की बातें करना उसकी दिनचर्या है। नदी के पास उसका छोटा सा घर है और एक सेवक उसकी सेवा में रहता है। अत्यन्त साधारण एवं शान्त जीवन जीने वाले इस व्यक्ति का एक मित्र है रामेश्वर जिसके प्रति उसके मन में प्रेम भाव है।

श्रीनाथ इस कहानी में दो बातों से विशेष रूप से प्रभावित होता है। एक, लैला के प्रेम एवं समर्पण भाव से और प्रज्ञासारथि द्वारा घर बसाने की इच्छा प्रकट करने से। ये दोनों बातें श्रीनाथ के हृदय में उथल–पुथल मचा देती है और उसे यह सोचने पर मजबूर करती है कि प्रेम एवं घर गृहस्थी का महत्त्व क्या हैं। लैला की आंखों में दृढ़–विश्वास एवं समर्पण से पूर्ण प्रेम देख कर श्रीनाथ विचलित हो उठता है। प्रेम से पागल लैला को वह अपना लेना चाहता है परन्तु उसे लगता है कि लैला अपने प्रेमी के अतिरिक्त किसी की नहीं हो सकती। प्रेम के इस दिव्य स्वरूप के सामने श्रीनाथ का ब्रहमचर्य व्रत डगमगा जाता है। साधारण रूप में श्रीनाथ शीलवान, उदार एवं धार्मिक विचारों वाला सद्गुणी व्यक्ति है। गरीबों पर दया करना, सबसे प्रेम करना और सीमित दायरे में जीवन गुजारते हुए संतुष्ट रहना उसके चरित्र के विशेष गुण है।

कहानी का दूसरा पात्र हम लैला को मान सकते हैं जो एक बनजारन है। बनजारा जाति समाज का वह अंग है जो एक स्थान पर टिक कर नहीं रहते। जगह जगह घूम कर वस्तुएं बेचना इनका पेशा होता है। ये लोग जानवर पालते हैं और जानवरों पर अपनी गृहस्थी लाद कर इधर उधर घूमते हैं। कहानीकार के अनुसार – 'ये सभ्य मानव समाज के विद्रोही हैं, तो भी इनका एक समाज है। सभ्य समाज के नियमों को कभी न मान कर भी इन लोगों ने अपने लिए नियम बनाए हैं। किसी भी तरह, जिनके पास कुछ है, उनसे ले लेना और स्वतंत्र होकर रहना। इनके साथ सदैव आज के संसार के लिए विचित्रतापूर्ण संग्रहालय रहता है। ये अच्छे घुड़सवार और व्यापारी हैं।'
लैला अपार सौन्दर्य की स्वामिनी है। कथावाचक श्रीनाथ उसकी सुन्दरता से इतना प्रभावित होता है कि उसे लगता है कि यह सौन्दर्य दुर्लभ है – ''मैं उसके सुन्दर मुख को कला की दृष्टि से देख रहा था। कला की दृष्टि, ठीक तो बौद्ध–कला, गांधार कला, द्रविड़ों की कला इत्यादि नाम से भारतीय मूर्ति–सौन्दर्य के अनेक विभाग जो है; जिससे गढन का अनुमान होता है। मेरे एकांत जीवन को बिताने की सामग्री में इस तरह का जड़ सौन्दर्य बोध भी एक स्थान रखता है।... चिट्ठी पढ़ने की बात पूछने पर भी मैं अपने मन में निश्चय कर रहा था कि, वास्तविक गांधार प्रतिभा है या ग्रीस और भारत का इस सौन्दर्य में समन्वय है।'' एक बार रात की चांदनी में लैला को देखकर श्रीनाथ को ऐसा लगा– ''मैंने चंद्रिका के आलोक में पहचान लिया, वह लैला का सुन्दर मुख था। कुमुदनी की तरह प्रफुल्ल चांदनी में हंसता हुआ लैला का मुख।'' लैला रामेश्वर नामक एक पुरुष से अथाह प्रेम करती है, एक पत्र द्वारा अपना प्रेम उस पर प्रकट कर चुकी है। इस पत्र के उत्तर में पुरुष द्वारा अस्वीकार कर दिए जाने पर वह पागलों की तरह चीखती हैं। वह बड़ी हिम्मतवाली स्त्री है अपने पास चाकू–छुरी भी रखती है परन्तु प्रेम में यह असफलता उसे बुरी तरह से तोड़ डालती है। कथावाचक के शब्दों में ''लैला अबाधगति से चलने वाली निर्मारणी है। पश्चिम की सर्राटे से भरी हुई वायु–तरंग माला है। उसको रोकने की सामर्थ्य किस में है।'' वह गुल नामक एक नवयुवक के साथ रामेश्वर द्वारा उसके प्रेम को ठुकराने के बाद वह विचलित हो जाती है। वह श्रीनाथ से कहती है कि उसके हृदय में तूफान मचा हुआ है कि वह एक बार रामेश्वर को देखना चाहती है।
लैला आत्म–सम्मान वाली स्त्री है। उसके मन में रामेश्वर के परिवार के लिए दया, करुणा एवं सहानुभूति है। वह रामेश्वर की पत्नी मालती के सामने कुछ भी प्रकट नहीं होने देती। रामेश्वर द्वारा लिखे पत्र को उसी के मुंह से सुन कर वह संतोष कर लेती है और उसकी बेटी कमलो को मूंगों की एक माला भेंट करके चली जाती है। लैला का प्रेम अटल एवं सत्य है। इस प्रेम पर वह अपने प्राण भी न्यौछावर कर देती है। अपने प्रेम के असफल होने के बाद वह वैरागी संन्यासिनी की तरह इधर–उधर भटकती है। सांसारिक मोह माया त्याग कर वैराग्य धारण कर लेती है। उसके परिवार जन समझते हैं कि उसे किसी बुरी छाया ने घेर लिया है। उसके हृदय में उठती आंधियां उसके नेत्रों में साकार होती हैं जिन्हें श्रीनाथ पहचानते हैं पर उसके लिए कुछ कर नहीं पाते। वह श्रीनाथ से कहती है –''वह जो तेज हवा चलती है, जिसमें बिजली चमकती है, बरफ गिरती है, जो बड़े–बड़े पेड़ों को तोड़ डालती है। हम लोगों के घरों को उड़ा ले जाती है। (आंधी) वही मेरे यहां चल रही है।'' (कह कर लैला ने अपनी छाती पर हाथ रख दिया) लैला एक बार अपने प्रेमी को देखने की इच्छा व्यक्त करती है और उसे देखने के बाद संसार से सारे नाते रिश्ते तोड़ कर पागल हो जाती है। लैला का प्रेम एक तरफा है पर अलौकिक है, निस्वार्थ है और अद्‌भुत हैं। इस प्रेम के लिए वह अपने प्राण तक विसर्जित कर देती है।
रामेश्वर इस कहानी का एक अन्य पात्र है जो श्रीनाथ का मित्र है। वह क्यूरियों मर्चेन्ट हैं। वह अच्छे आचरण

वाला और घर–गृहस्थी वाला पुरुष है। अपने परिवार के प्रति अपने कर्त्तत्यों को जानता है और उन्हें निभाना भी चाहता है। लैला उससे प्रेम करती है पर उसमें उसका कोई दोष नहीं क्योंकि उसके मन में लैला के प्रति कोई गल्त भावना नहीं। लैला द्वारा अपना प्रेम प्रदर्शित करने पर वह उसे स्पष्ट तौर पर समझा देता है कि वह उससे प्रेम नहीं कर सकता। वह अपने परिवार के साथ रह कर जीवन व्यतीत करना चाहता है। रामेश्वर की यह स्वच्छ स्वभाव एवं अच्छे आचरण वाला पुरुष सिद्ध करती है। उसे किसी प्रकार का कोई लोभ भी नहीं है वह लैला से जो कुछ खरीदता है उसका मोल देता है। रामेश्वर श्रीनाथ का परम मित्र है और उसके सुख–दुख में उसका ध्यान रखता है। वह पत्नी एवं बच्चों के प्रति भी वफादार है और उनकी खुशियों का ध्यान भी रखता है।

प्रज्ञासारथि इस कहानी का एक अन्य पात्र है जो ब्रह्मचारी है और गरीब बच्चों के लिए पाठशाला चलाता है। गरीब सथिया की मृत्यु के बाद उसके पुत्र कल्लू को कह अपनी पाठशाला में रख कर उसका पालन–पोषण करते हैं। श्रीनाथ उसके मित्र हैं जिनके साथ वह प्रायः जीवन और उसकी समस्याओं सम्बन्धी बातचीत करते हैं। प्रज्ञासारथि ने जीवन का लंबा समय ब्रह्मचारी रह कर बिताया और अब वह गृहस्थ जीवन का सुख प्राप्त करना चाहता है लेखक ने इस पात्र के माध्यम से मनुष्य स्वभाव के विभिन्न पक्षों का उल्लेख किया है।

2.5.2.3 उद्देश्य :

इस कहानी का सबसे महत्त्वूपर्ण अंग इसका उद्देश्य है। श्रीनाथ, प्रज्ञासारथि, रामेश्वर एवं लैला की इस सुन्दर कहानी के माध्यम से लेखक ने जीवन के कुछ सत्यों को बड़ी कलात्मकता से प्रस्तुत किया है। इन सत्यों को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है –

1) प्रसाद ने मानव मन की सबसे प्रबल शक्ति–मोह ममता की प्रवृत्ति का उल्लेख किया है। यह प्रवृत्ति संसार के प्रत्येक प्राणी में पाई जाती है। सथिया के मरने के बाद उसके बेटे को उसके जाति वाले लोग ले जाते है। प्रसाद इस विषय में कहते है –''स्नेह, माया, ममता इन सबो की भी एक घरेलू पाठशाला है। जिसमें उत्पन्न होकर शिशु धीरे–धीरे इनके अभिनय की शिक्षा पाता है। उसकी अभिव्यक्ति के प्रकार और विशेषता से वह आकर्षक होता है सही, किन्तु, माया–ममता किस प्राणी के हृदय में न होगी। मुसहरों को पता लगा– वे कल्लू को ले गए।''

2) इस कहानी में प्रसाद ने मित्रता के संबंध पर विचार किया है। जीवन में मैत्री–सम्बन्ध विशेष महत्त्व रखते हैं। जिसे हम मित्र मानते हैं उस पर पूर्ण अधिकार रखना चाहते हैं और उससे बहुत कुछ पाने की इच्छा भी रखते हैं और इस सत्य को स्पष्ट करते हुए प्रसाद लिखते हैं – ''मित्र मान लेने पर मनुष्य उससे शिव के समान आत्म–त्याग, बोधिसत्व के सदृश्य सर्वस्व समर्पण की जो आशा करता है और उसकी शक्ति की सीमा को प्रायः अतिरंजित देखता हैं।''

3) प्रसाद ने इस सुन्दर कहानी के माध्यम से भारत के अतीत गौरव का गुणगान किया है। भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही धार्मिक महापुरुषों की स्तुति एवं आराधना की जाती रही है। इन महान पुरुषों की स्मृति में मंदिर एवं विभिन्न धार्मिक स्थलों एवं तीर्थों का निर्माण होता रहा है। इस कहानी में प्रज्ञासारथि ने जहां पाठशाला बनायी है। उस स्थान को पवित्र समझा जाता है। ऐसा माना जाता है कि किसी समय उस स्थान पर तथागत के पवित्र चरण पड़े थे। भारत की पवित्र धरती पर इस प्रकार के सद्पुरुषों ने अपने जीवन में संयम धरण करके ब्रह्मचर्य धर्म का पालन किया। प्रसाद इस देश के अतीत गौरव का गुणगान करते हुए लिखते हैं – ''आज भी आध्यात्मिक रहस्यों के उस देश में

उस महती साधना का आर्शीवाद बचा हैं। अभी भी बोध–वृक्ष पनपते हैं........ भारत की अपूर्वता का अनुभव होता है........ भारत के लिए तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि विजय धर्म में है।''

4) इस कहानी का सर्वप्रमुख उद्देश्य है स्त्री–पुरुष सम्बन्धें पर विचार करना। प्रज्ञासारथि ब्रह्मचारी हैं पर इस जीवन को छोड़कर गृहस्थ धारण करना चाहते हैं। उनका मत है कि स्त्री का साथ गल्त होता है यह आवश्यक नहीं। स्त्री विचित्र पहेली है जिसे जानना सहज नहीं। परन्तु उससे संबंध जोड़े बिना उसे जानना भी संभव नहीं। घर परिवार एवं पत्नी का सुख विचित्र अनुभव है जिसे स्पष्ट करने के लिए लेखक ने रामेश्वर के परिवार का उल्लेख किया है। मनुष्य के जीवन का सही आनन्द सुख और दुख दोनों को अनुभव करने में है। जीवन की सच्चाईयों से भाग कर अकेल जीवन बिता कर मनुष्य सुख नहीं पा सकता। प्रसाद के शब्दों में – ''सुख और दुख, आकाश और पृथ्वी, स्वर्ग और नरक के बीच में है वह सत्य, जिसे मनुष्य प्राप्त कर सकता है।'' शारीरिक संयम की अपेक्षा मानसिक संयम श्रेष्ठ है जिसे संसार में रह कर भी पाया जा सकता है। ''शारीरिक क्रम तो गौण है, मुख्य संयम तो मानसिक है।'' मानवीय संबंधों में प्रेम सबसे महत्त्वपूर्ण होता है। यह प्रेम ही जीवन है। लेखक ने इस कहानी में लैला के दृढ़ प्रेम के वर्णन के माध्यम से जीवन में प्रेम के महत्त्व को प्रस्तुत किया है। सच्चे प्रेम में त्याग एवं आत्म–समर्पण का उच्च भाव होता है जिसकी सच्ची प्रतिमूर्ति लैला है।

इस कहानी का शीर्षक भी इसी प्रेम भाव पर आधारित है। लैला के हृदय में प्रेम का भीषण अंधड़ चलता है। वह अपने प्रेम के प्रति दीवानी हो जाती है। कथावाचक श्रीनाथ लैला के लिए इस प्रबल भाव का अनुभव करता है। उसे लगता है कि लैला का प्रेम उसके लिए चिन्तन का ऐसा विषय है। उसके हृदय में आंधी चलती है जिसमें लैला का मुख बिजली की तरह कौंध जाता है।

2.5.4 सारांश :

इस कहानी के अध्ययन के उपरान्त आप निश्चित रूप से यह जान गए हैं कि प्रसाद प्रेमभाव के प्रशंसक हैं और शुद्ध सात्विक प्रेम के समर्थक हैं। निस्वार्थ भाव से किया गया प्रेम अपनी हानि–लाभ की चिन्ता नहीं करता। इसमें प्रेमी–प्रेमिका प्रेम के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं।

2.5.5 शब्दावली :

पड़ाव	–	ठहरने का स्थान
सद्गुण	–	अच्छे गुण
रौद्र	–	भयानक रूप (क्रोध)
व्यथित	–	बेचैन
दिनचर्या	–	रोज के कार्य
चंद्रिका	–	चांदनी
आध्यात्मिक	–	धर्म से सम्बन्ध रखने वाले विचार

2.5.6 लघु प्रश्न :

1. आकाशदीप के शीर्षक को स्पष्ट करें।
2. कहानी के तत्त्वों के विषय में लिखें।
3. कहानी के प्रमुख पात्र की विशेषताएं लिखें।
4. प्रस्तुत कहानी के संवादों पर प्रकाश डालें।

5. आकाशदीप का उद्देश्य स्पष्ट करें।
6. 'आंधी' कहानी का नायक कौन है?
7. लैला के प्रेम की सबसे बड़ी विशेषता क्या है?
8. प्रज्ञासारथि ने ब्रहमचर्य जीवन का त्याग क्यों किया?
9. श्रीनाथ अकेला रहना क्यों पसन्द करते हैं?
10. कल्लू कौन था?

2.5.7 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. 'आकाशदीप' का उद्देश्य बताते हुए सार लिखें।
2. आकाशदीप कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्र चित्रण।
3. 'आकाशदीप' कहानी के तत्त्वों के आधार पर आलोचना करें।

पाठ संख्या - **2.6** लेखक : श्री राजिन्द्र कुमार

कहानी विवेचन : मधुवा, पुरस्कार

इकाई की रूपरेखा :

2.6.0 उद्देश्य
2.6.1 प्रस्तावना
2.6.2 'मधुवा' (कहानी)
2.6.2.1 कथावस्तु
2.6.2.2 पात्र तथा चरित्र–चित्रण
2.6.2.3 उद्देश्य
2.6.3 'पुरस्कार' (कहानी)
2.6.3.1 कथावस्तु
2.6.3.2 पात्र तथा चरित्र–चित्रण
2.6.3.3 उद्देश्य
2.6.4 सारांश
2.6.5 शब्दावली
2.6.6 बोध प्रश्न

2.6.0 उद्देश्य :

इस पाठ में आपको प्रसाद जी दो कहानियां 'मधुवा' तथा 'घीसू' से परिचित करवाया जाएगा। इन दोनों कहानियों में मानव मन के कोमल भावों – करुणा एवं ममता के महत्व को स्पष्ट किया गया है। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि –

* प्रसाद मानवीय मनोभावों के कुशल चितेरे हैं,
* प्रसाद मन के कोमल भावों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन करने में कुशल हैं, और
* निस्वार्थ प्रेम एवं करुणा का भाव सचमुच महत्वपूर्ण कहा जा सकता है।

2.6.1 प्रस्तावना :

प्रसाद की कहानियों में दैनिक जीवन की घटनाओं का चित्रण मिलता है और साथ ही पात्रों के मनोभावों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी होता है। प्रसाद पात्रों के मन में गहरे उतर कर उसका चित्रण बड़ी सजीवता से प्रस्तुत करते हैं। मानव जीवन में मन के भाव बहुत महत्व रखते हैं। जीवन मन की खुशी पर आधारित होता है। मनुष्य वही काम करना चाहता है जिससे उसे सुख का अनुभव हो। इस पाठ में प्रस्तुत दोनों कहानियां मानवीय मनोभावों को प्रस्तुत करने में पूर्ण रूप से सफल हैं।

2.6.2 मधुवा :

'मधुवा' प्रेम के अद्भुत रूप की कहानी है। प्रसाद प्रेम के भाव के प्रशंसक रहे हैं और इनकी रचनाओं में प्रेम के विविध रूप मिलते हैं। इस कहानी में एक शराबी व्यक्ति जिसे केवल शराब पीकर आराम से रहने की आदत थी, एक अनाथ बच्चे के प्रेम में लिप्त होकर यह आदत छोड़नी पड़ी। बच्चे के प्रति ममता भाव ने उसे एक अच्छा आदमी बना दिया। जीवन में प्रायः ऐसा होता है कि मनुष्य के सामने ऐसी स्थिति आ जाती है कि उसे कोई निर्णय लेना पड़ता है जिससे उसका पूरा जीवन ही बदल जाता है।

2.6.2.1 कथावस्तु :

इस कहानी में एक शराबी है जो कोई कामधन्धा नहीं करता केवल बातों की कमाई खाता है। इधर–उधर की बातें हांक कर जो कुछ कमाता है उसकी शराब पीकर सो जाता है। एक ठाकुर सरदार सिंह इसके परिचित थे। ठाकुर को कहानियां सुनने का चस्का था। शराबी उन्हें तरह तरह की कहानियों सुनाता और ठाकुर उसे एक रुपया देते थे। शराबी को भोजन मिले या ना मिले पर वह शराब रोज़ पीता था। एक दिन ठाकुर को कहानी सुना कर शराब पीकर वह अपनी कोठरी में आता है तो उसे एक बच्चे के रोने का स्वर सुनाई देता है। यह छोटा सा बालक किसी कुंवर साहिब के पास काम करता है। कुंवर आम तौर पर इसे मारता पीटता रहता है। ठाकुर का जमादार लल्लू बालक को डांटता है जो लगातार रो रहा था। शराबी बालक के छोटे से सुन्दर गोरे मुंह को देखकर विचलित हो उठता है। शराबी उसे अपनी कोठरी में बैठाता है। कोठरी में पड़ा एक रोटी का टुकड़ा देता है। बालक भूखा होने के कारण रोता है। शराबी रात के समय बाजार जाकर उसके लिए मिठाई पूरी लाता है। खाना खिलाकर वह उसे अपने साथ सुलाता है। अगले दिन सुबह वह बालक को कुछ खाने को देता है। बालक उसी के पास रहना चाहता है। शराबी सोचता है कि वह उसकी जिम्मेदारी कैसे ले सकता परन्तु बालक का मोह उसे अपने पास रखने पर मजबूर कर देता है। बालक ठाकुर के पास लौटना नहीं चाहता क्योंकि वहां उसे मार पड़ती है और खाने को नहीं मिलता। शराबी बालक के मोह से प्रभावित होकर शराब न पीने की सौगंध लेता है और मेहनत करके उसे पालने की इच्छा करता है।

2.6.2.2 पात्र तथा चरित्र-चित्रण :

इस कहानी का मुख्य पात्र शराबी है जो घर गृहस्थी के झंझटों से मुक्त रह कर जीना चाहता है। वह थोड़ा बहुत काम करके या गप्पें हांक कर जो कुछ कमाता है उससे शराब पीकर मस्त पड़ा रहता है। उसका विश्वास है कि ''मौज बहार की एक घड़ी, एक लंबे दुखपूर्ण जीवन से अच्छी है। उसकी खुमारी में रूखे दिन काट लिए जा सकते हैं।'' वह दुनिया के जंजालों को बेकार समझता है। दुनिया के बारे उसका विचार है कि – ''अमीर–कंगाल हो जाते हैं। बड़ों–बड़ों का घमंड चूर होकर धूल में मिल जाते है। तब भी दुनिया बड़ी पागल है। मैं उसके पागलपन को भुलाने के लिए शराब पीने लगता हूं। नहीं तो यह बुरी बला कौन अपने गले लगाता।'' शराबी होने के साथ–साथ यह व्यक्ति कोमल–हृदय वाला दयालु व्यक्ति है जो एक गरीब बालक को दुखी नहीं देख सकता। उसके मोह में शराब पीना छोड़ कर कुछ काम करके उसे पालना चाहता है। कहारी का दूसरा पात्र बालक मधुआ है जो ठाकुर के घर काम नहीं करना चाहता क्योंकि वहां उसे मार पड़ती है। वह शराबी के पास किसी भी हालत में रहने को तैयार है। वह बड़े दृढ़ निश्चय से कहता है – ''कहीं भी रह सकूंगा पर उस ठाकुर की नौकरी नहीं कर सकूंगा।'' इतने छोटे बालक में स्वाभिमान कर भाव दिखाना इस कहानी की विशेषता है।

2.6.2.3 उद्देश्य :

इस कहानी का उद्देश्य है – मानव–मानव में प्रेम भाव की अभिव्यक्ति। प्रेम मनुष्य की जन्मजात वृत्ति है। मानव मन की कोमल भावनाओं में प्रेम, दया, ममता एवं करुणा के भाव सदैव विद्यमान रहते हैं। समय एवं स्थिति के अनुसार यह हृदय में जागृत होते हैं और कभी–कभी अपना स्थायी प्रभाव छोड़ जाते हैं। इस कहानी में एक शराबी के मनोभाव का सुन्दर चित्रण है जिसमें वह एक गरीब और अनाथ बच्चे के मोहवश अपनी शराब की लत को त्याग कर कर्मशील बनता है। यह कहानी निकम्मे एवं व्यसनकार लोगों के लिए एक संदेश देती है कि मनुष्य को कठिन परिश्रम द्वारा नेक कमाई करके गरीब अनाथ बच्चों को सहारा देना चाहिए। शराबी द्वारा मधुआ जैसे गरीब बच्चे को अपनाना सराहनीय है।

2.6.3 पुरस्कार (कहानी) :

'पुरस्कार' प्रसाद की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कहानी है जिसमें प्राचीन ऐतिहासिक घटना को आधार बनाकर सच्चे प्रेम का चित्र प्रस्तुत किया है। इसमें एक स्त्री–द्वारा अपने देश के लिए बलिदान और अपने प्रेमी के प्रति त्याग भाव एवं समर्पण भाव को बड़े मार्मिक शब्दों में चित्रित किया गया है। प्रसाद प्रेम के सुन्दर एवं पवित्र रूप के प्रशंसक रहे हैं।

2.6.3.1 कथावस्तु :

कहानी का सम्बन्ध कौशल नगर के एक रिवाज से है जिसमें इस देश का राजा हर वर्ष किसी एक खेत को चुना कर उसमें हल चलाता हैं। यह खेत राजा का खेत कहलाता है। इस खेत के मालिक को उसका मूल्य दे दिया जाता है। यह मूल्य उस खेत की कीमत से कहीं अधिक होता है। इस रिवाज के अनुसार राजा एक दिन के लिए कृषक बनता है। इन्द्र देवता की पूजा होती है, फूलों और खीलों की वर्षा होती हैं, मंगल कलश रख कर मधुर गीत गाए जाते हैं और राजा द्वारा बैलों से हल जोता जाता है। कहानी में इस अवसर का उल्लेख है जिसमें मधूलिका नामक एक कन्या का खेत इस पर्व के लिए चुना जाता है। वह राजा को बीजों का थाल प्रस्तुत करती है वह कृषक बालिका है और उसे अपनी धरती से बहुत लगाव है। प्रजा के लोग इस पर्व में उपस्थित हैं इनमें मगध का राजकुमार अरुण भी अपने रथ पर बैठा पर्व को देख रहा है। वह मधूलिका के सौन्दर्य के प्रति आकर्षित है। राजा द्वारा इस कन्या को कुछ स्वर्ण मुद्राएं पुरस्कार स्वरूप भेंट की जाती है परन्तु वह अस्वीकार कर देती है। वह अपने पितामहों की भूमि को बेचना नहीं चाहती। राजा द्वारा घोषणा की जाती है कि मधूलिका राजकीय संरक्षण की अधिकारणी होगी। राजा के मंत्री उसे इस बात से अवगत कराते हैं कि वाराणसी युद्ध में वीरता से युद्ध करके कौशल राजा की लाज रखने वाले योद्धावीर सिंह मित्र मधूलिका के पिता थे।

राजकुमार अरुण मधूलिका के सौन्दर्य एवं स्वाभिमान से प्रभावित होकर उससे प्रेम करने लगता है। वह मधूलिका से प्रणय–निवेदन करता है और उसे अपनी रानी बनाना चाहता है। इसके लिए वह मधूलिका से कहता है कि वह राजा से दुर्ग के पास वाली जमीन मांग ले। वहां से सेना सहित कौशल पर चढ़ाई करके राजकुमार अरुण बड़ी सहजता से जीत सकता है। वह मधूलिका को अपने राज्य की रानी बना कर सम्मानित करना चाहता है। अरुण के प्रेम से अभिभूत होकर मधूलिका यह प्रस्ताव मान लेती है। वह राजा के पास जाकर दुर्ग के पास वाली जमीन मांगती है। राजा उससे पूछता है कि उसे वह बंजर और दुरुह रास्तों वाली जमीन क्यों चाहिए। मधूलिका उत्तर देती है कि वह वहां खेती करके रहना चाहती है। राजा सहर्ष उसे वह जमीन दे देता है। राजकुमार अरुण वहां अपनी सेना का गढ़ बनाता है। राज्य में किसी को भी उसका पता नहीं लगता। अरुण सेना सहित आक्रमण करने की पूरी तैयारी कर लेता है। जब युद्ध का समय पास आता है तो मधूलिका के मन में अपराध भाव

जाग जाता है। वह स्वयं को धिक्कारती है कि बड़े परम वीर योद्धा की पुत्री होकर वह देशद्रोही बन जाएगी। वह घोर अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित हो उठती है। एक तरफ अरुण का प्रेम है और दूसरी तरफ देश से विद्रोह। अन्त में वह अपने मानसिक संघर्ष पर विजय प्राप्त करती है और अपने मन से फैसला करती है कि वह देशद्रोही नहीं बनेगी। वह तुरन्त राजमहल में पहुंच कर अरुण द्वारा किए जाने वाले आक्रमण की सूचना देती है। राजा के सैनिक उससे पहले ही दुर्ग पर पहुंच जाते हैं। अरुण के प्रयत्न विफल हो जाते हैं। सैनिकों द्वारा देश को बचा लिया जाता है और अरुण को बन्दी बनाया जाता है। बन्दी के रूप में अरुण को राजा के सामने लाया जाता है। सभा मंडप में सारी प्रजा एकत्र होकर जयघोष करती है कि श्रावस्ती का दुर्ग दस्यु के हाथों में जाने से बच गया। प्रजा की सहमति से अरुण को प्राणदंड मिलता है। राजा प्रसन्न होकर मधूलिका को अपनी सारी भूमि देना चाहता है पर वह अस्वीकार करती है। वह मधूलिका के कार्य की प्रशंसा करता है और उसे कुछ पुरस्कार देना चाहता है। मधूलिका अरुण के पास जाकर खड़ी हो जाती है और कहती है कि उसे पुरस्कार के रूप में प्राण दंड चाहिए। कहानी की कथावस्तु अत्यन्त सुन्दर और प्रभावपूर्ण है। इसमें एक स्त्री के मन के रहस्य को सुन्दर शब्दों में प्रस्तुत किया गया है।

मधूलिका अपने देश और राष्ट्र के प्रति समर्पित है और पिता के सम्मान को बचाने के लिए अपने प्यार को कुर्बान कर देती है।

2.6.3.2 पात्र तथा चरित्र चित्रण :

इस कहानी की मुख्य पात्र मधूलिका है। वह परम सुन्दरी कृषक बालिका है। राजकुमार अरुण उसके भोले सौन्दर्य और सरल चितवन से प्रभावित है। वह स्वाभिमानी बालिका है। अपने खेत को राजा का खेत चुने जाने पर वह उसका मूल्य स्वीकार नहीं करती। उसे जो स्वर्ण–मुद्राओं का थाल मूल्य के रूप में मिला उसे वह राजा पर न्यौछावर करके बिखेर देती है। वह स्वाभिमान भरे स्वर में राजा से कहती है –''देव ! यह मेरे पितृ–पितामहों की भूमि हैं। इसे बेचना अपराध है; इसलिए मूल्य स्वीकार करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है।'' अपने पितामहों की भूमि छिन जाने पर वह बहुत दुखी होती है। वह दिन रात मेहनत करके दूसरों के खेतों में काम करती है और छोटी सी कुटिया में दिन व्यतीत करती है। वह सुन्दर युवती है और मगध के राजकुमार अरुण द्वारा प्रेम–प्रस्ताव प्राप्त करती है। वह अपने कर्त्तव्यों को सबसे अधिक महत्त्व देती है। अवसर मिलने पर भी वह अपने सुख को महत्त्व ना देकर देश प्रेम एवं उसके प्रति अपने कर्त्तव्यों को महत्त्व देती है। वह अपने सुख की परवाह न करके अन्त में राजा से प्राण दंड मांगती है। एक साधारण स्त्री होते हुए भी मधूलिका महान चारित्रिक गुणों की स्वामिनी है। उसे अपनी जमीन के बदले रुपए पैसे की लालच नहीं है। यह मधूलिका का बहुत बड़ा त्याग है। उसका राष्ट्र प्रेम भी विलक्षण है। वह अपने देश के प्रति द्रोह नहीं कर पाती और अपने पिता का सम्मान भी बचा कर रखती है। मधूलिका का चरित्र बहुत ऊंचा है। राजकुमार अरुण द्वारा प्रेम–प्रस्ताव रखने पर वह बड़े साफ शब्दों में इंकार करती है। वह अपनी सामर्थ्य से बढ़ कर कुछ नहीं करना चाहती। वह अरुण से कहती है – ''मैं कृषक–बालिका हूं। आप नन्दबिहारी और मैं पृथ्वी पर परिश्रम करके जीने वाली। आज मेरी स्नेह की भूमि पर से मेरा अधिकार छीन लिया गया। मैं दुख से विकल हूं; मेरा उपहास न करो।'' मधूलिका स्वाभिमानी है। वह अपनी भूमि की कीमत नहीं लेती और दूसरों के खेतों में काम करके रूखी–सूखी खाकर गुजार करती है। आस पास के सभी कृषक उसका सम्मान करते हैं। वह एक आदर्श बालिका है।

मधूलिका स्त्री–सुलभ गुणों से पूर्ण है। अरुण द्वारा प्रेम–प्रस्ताव रखने पर वह उसे स्वीकार नहीं करती परन्तु उसकी मधुर स्मृति को ह्रदय में संजोये रहती है। दारिद्रय की ठोकरों से मजबूर होकर वह अरुण को याद करती है। एक रात जब बादल गरजते हैं और उसकी कुटिया में यानी टपकता है। वह अरुण को याद करती है। अचानक उसे अपनी झोपड़ी के बाहर कुछ शब्द सुनाई देते हैं। वह पथिक आश्रय मांगने आता है। बिजली की चमक में वह पथिक को पहचान लेती है। वह राजकुमार अरुण होता हैं। अरुण बताता है कि वह मगध का विद्रोही निर्वासित राजकुमार है और कौशल नगर में आजीविका खोजने आया है। अरुण के साथ रह कर वह भी अपने प्रेम का प्रदर्शन करके संतुष्ट होती है और उसके लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाती है।

मधूलिका अत्यन्त बुद्धिमान एवं साहसी बालिका हैं। वह अरुण के साहस एवं शौर्य की प्रशंसक भी है। उसके चरित्र का महानतम गुण है उसकी आदर्शवादिता इसी से प्रभावित होकर वह देश द्रोही नहीं बन सकी। देश की रक्षा करने के कारण राजा से वह कोई पुरस्कार नहीं पाना चाहती। वह अपने प्रेमी के साथ ही मृत्यु को प्राप्त होना चाहती क्योंकि वह उसके बिना जीना नहीं चाहती। इससे स्पष्ट है कि वह अपने देश के प्रति भी वफादार है और प्रेमी के प्रति भी।

अरुण इस कहानी का दूसरा पात्र है। वह मगध का राजकुमार है। मधूलिका के भोले सौन्दर्य से प्रभावित होकर उसे अपनाना चाहता है वह कहता है कि, ''मेरा ह्रदय तुम्हारी उस छवि का भक्त बन गया हूं, सरलता की देवि। मैं मगध का राजकुमार तुम्हारे अनुग्रह का प्रार्थी हूं।''

मधूलिका द्वारा इस प्रस्ताव को ठुकरा देने पर वह वहां से चला जाता है। भाग्यवश वह पुनःम ध ूलिका से मिलता है। मधूलिका उसके प्रेम को स्वीकार करती है। अरुण वीर पुरुष है। मगध द्वारा निर्वासित होने के बाद वह पुनः अपने राज्य की स्थापना करना चाहता है। वह अपने साथ सैनिकों को भी रखता है। मधूलिका द्वारा पूछने पर वह कहता है – ''मैं अपने बाहुबल पर भरोसा करता हूं। नए राज्य की स्थापना कर सकता हूं।'' वह मधूलिका से कहता है, ''मैं तुम्हें राजरानी के सम्मान में सिंहासन पर बिठाऊंगा.... तुम्हारी इच्छा हो, तो प्राणों से पण लगाकर तुम्हें इस कौशल–सिंहासन पर बैठा हूं। मधूलिके। अरुण के खडग का आतंक देखोगी?'' मधूलिका अरुण के साहस से प्रभावित होकर उसका पूरा साथ निभाने को तत्पर हो जाती है। वह कौशल नरेश से दुर्ग के पास वाली जमीन मांगती है। यह अरुण के आकर्षण है जो उसे यह कार्य करने के लिए बाध्य करता है।

अरुण कुशल योद्धा है वह सौ सैनिकों की सहायता से कौशल नगर पर विजय पाने का साहस रखता है। आक्रमण से पहले वह मधूलिका से कहता है – ''चार प्रहर और, विश्वास करो, प्रभात में ही इस जीर्ण–कलेवर कौशल–राष्ट्र की राजधानी श्रवस्ती में तुम्हारा अभिषेक होगा और मगध से निर्वासित मैं एक स्वतंत्र राष्ट्र का अधिपति बनूंगा।'' अरुण के जीवन की बिडम्बना यह रही कि जिस प्रेमिका के माध्यम से उसने कौशल का राजा बनने का सपना देखा उसी प्रेमिका के कारण वह बंदी बना। जब राजा ने उसे प्राणदंड दिया तो मधूलिका को अपने पास खड़ा देखकर वह अपने भाग्य पर हंस पड़ा। मधूलिका अरुण को राजा तो नहीं बना सकी पर उसके प्रेम को छोड़ पाना उसके लिए असंभव था। राजा से अरुण के बराबर प्राणदंड मांग कर उसने अरुण के प्यार को सम्मान दिया।

2.6.3.3 उद्देश्य :

इस कहानी का प्रमुख कर्त्तव्य–परायणता को महत्त्व देना है। प्रसाद ने मधूलिका के चरित्र के माध्यम से इस महान आदर्श को प्रस्तुत किया है। मधूलिका आजीवन अपने कर्त्तव्यों का पालन करती रही। सबसे पहले उसने अपने पिता–पितामहों की धरती का मूल्य नहीं लिया। स्वयं कष्ट सहती रही पर

अपने वंश का अपमान नहीं किया। उसे स्वाभिमान से अपनी रोटी कमाई पर किसी से कुछ नहीं मांगा। अरुण के साथ अपने प्रेम सम्बन्धों में भी उसने कर्त्तव्य पालन किया प्रेमी की इच्छा को पूरा करना अपना कर्त्तव्य समझा। अपने प्रेमी का अन्त तक साथ निभाते हुए उसने अपने लिए भी प्राण दंड ही आता।

इस कहानी में लेखक का उदेद्श्य यह स्पष्ट करता है कि जीवन में समाज, देश एवं राष्ट्र के लिए कुर्बान होना हमारा कर्त्तव्य है। मधूलिका ने अपने प्यार एवं जीवन को होम करके देश एवं राष्ट्र की रक्षा के लिए जिस कर्त्तव्य का पालन किया वह सचमुच प्रशंसनीय है। संसार में ऐसे उदाहरण विरले ही प्राप्त होते हैं जिसमें व्यक्ति निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर देश एवं राष्ट्र के कल्याण के लिए स्वयं को न्यौछावर करता है।

2.6.4 सारांश :

इस पाठ में आपको प्रसाद की दो कहानियों से परिचित कराया गया है। 'मधुवा' कहानी मानव ह्रदय के कोमल भाव ममता से आपको परिचित कराती है। एक शराबी व्यक्ति एक बालक को अपना कर अपना जीवन सार्थक बनाना चाहता है। दूसरी कहानी में घीसू स्वतंत्र जीवन जीना चाहता है पर साथ ही एक अबला स्त्री की सहायता करने का भी तत्पर है। दोनों कहानियां मानव मन के भावों को ही बड़ी सुन्दरता से प्रस्तुत करती है।

'पुरस्कार' कहानी में मधूलिका की कर्तव्य–भावना अद्वितीय है। दोनों कहानियां प्रसाद की कहानी–कला की सुन्दर उदाहरण कही जा सकती हैं।

2.6.5 शब्दावली :

खुमारी	–	नशा
जन्मजात	–	जन्म से प्राप्त
वृति	–	आदत, स्वभाव
रेजगी	–	खुले टूटे पैसे (सिक्के)
सम्बल	–	आसरा
पाथेय	–	रास्ता (उद्देश्य)
गमक	–	खुशबू
विवशता –	मजबूरी	
दशाश्वमेध	–	एक स्थान का नाम
मार्मिक	–	दिल को छूने वाले
मुद्राएं	–	मोहरे
अभिभूत	–	प्रभावित
अन्तर्द्वन्द्व	–	मन में उठती भावनाएं
सामर्थ्य	–	पहुंच, योग्यता
विकल	–	परेशान

2.6.6 बोध प्रश्न :

1. मधुवा कौन था?
2. ठाकुर का शौक क्या था?
3. शराबी के चरित्र का प्रमुख गुण क्या है?

4. घीसू क्या काम करता था?
5. बिन्दो की मजबूरी क्या थी?
6. घीसू ने बिन्दो की सहायता किस प्रकार की?
7. मधूलिका ने अपने प्रेमी का साथ क्यों नहीं दिया?
8. मधूलिका किसकी बेटी थी?
9. मधूलिका ने पुरस्कार में क्या मांगा?